मासिक पत्रिका, दिसम्बर २०२२, वर्ष ०६, अंक १२

मान मन्दिर बरसाना

मूल्य १०/-

साध्वी श्रीमुरलिकाजी तीर्थराज प्रयागराज में
श्रीमद्भागवत् कथा की रसधारा बहाते हुए

अनुक्रमणिका

विषय- सूची — पृष्ठ- संख्या

१ ब्रज–भास्कर 'बरसाना'·····०५
२ सबसे सरस 'राधा नामाराधन'·····..०७
३ सच्चा साथी 'श्रीभगवन्नाम'.....०९
४ भक्ति से मोह–शमन ११
५ श्रीभगवान् ही परम पति.....१३
६ आसक्ति ही बन्धन १६
७ नित्यकेलि विलासमयी 'श्रीगह्वरवाटिका'.....२०
८ श्रीराधारसमय 'मानभवन'.....२३
९ श्रीराधारमण–प्राकट्यकर्त्ता–गुसाईं गोपालभट्टजी...२५
१०नित्य सनातनीय 'श्रीकृष्णजन्मभूमि'..... २६
११श्रीकेशवाचार्य सेवित ठाकुर 'श्रीहरिदेवजी'.....२८
१२ ब्रज के राजा 'दाऊ दयाल'.....३१

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो |

— *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

संरक्षक– **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922

(Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ–सेवा–यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रेमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवा द्रव्य किसी विश्वसनीय गौ सेवा प्रकल्प को दान कर गौ–रक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दू शास्त्रों में अंश मात्र गौ सेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

विशेष:– इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्–कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:– भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म–मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

संसार की भयावह स्थिति से हर प्राणी परिचित होते हुए भी उसी में सतत् मिथ्या सुख की आशा में बहुमूल्य जीवन को खो देता है। अनन्त कष्टों का निदान अवश्य है परन्तु वह दिखाई नहीं देता। अनादिकाल से हमारे शास्त्र व महज्जन विविध मार्गों को प्रशस्त करते आये हैं, फिर भी जीव ऐसा अभागा है कि उनका अनुसरण नहीं कर पाता। ऐसा भी एक रास्ता है कि जहाँ कुछ करना नहीं पड़ता। भगवान बड़े दयालु हैं, अकारण करुणावरुणालय हैं, वात्सल्य की पराकाष्ठा हैं, उन्होंने अपने निज धाम में निवास की सुविधा आपको प्रदान कर रखी है। 'धाम' साक्षात् श्रीहरि का ही स्वरूप है। भगवान के दर्शन पहले तो सर्वसुलभ है नहीं, यदि कदाचित् उनका सानिध्य मिल भी गया तो कुछ क्षणों का परन्तु धाम–सेवन से भगवान् की सतत् सन्निधि मिल जाती है। धाम की ऐसी महिमा है कि धामवासी को फिर कभी पुनरागमन के चक्कर में घूमना नहीं पड़ता। यही कारण है कि बड़े–बड़े महापुरुष धामाश्रय को ही परम श्रेय मानते हैं। हमारे परम पूज्य बाबाश्री ने भी अपने गृहत्याग के पश्चात् श्रीधाम 'बरसाना' में इस भावना से अखण्डवास किया कि यह शरीर केवल धाम के लिए ही है। धाम और धामवासीजनों को ही बाबा ने अपना आराध्य मानकर धामोपासना की है, ऐसे महापुरुषों की कृपा–सन्निधि प्राप्तकर धामनिष्ठा का पाठ पढ़ें और भवसागर पार हो जाएँ।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

ब्रज–भास्कर 'बरसाना'

श्रीरमणरेती में हुए बाबाश्री के वक्तव्य (३०/१०/२०२२) से संकलित

महावन के रमण रेती आश्रम में आने पर स्वाभाविक ही स्मृति होती है स्वामी श्रीशरणानन्दजीमहाराज के गुरुदेव श्रीहरिनामदासजीमहाराज की; वे इतने सरल स्वभाव के थे कि अपनी ब्रजयात्रा लेकर जब बरसाना में आते थे तो वृद्धावस्था के बावजूद भी ब्रह्माचल पर्वत के सबसे ऊँचे शिखर पर स्थित हमारे मानगढ़ पर चढ़कर पहुँच जाते थे। एकबार हमने उनसे कहा भी कि महाराज ! इतनी वृद्धावस्था में भी आप इतने ऊपर क्यों चढ़े ? उन्होंने कहा – 'नारायण ! श्रीजी के धाम में ऊपर–नीचे सब ठीक है, सर्वत्र यहाँ आनन्द है। ' महाराजजी अपनी ब्रजयात्रा के साथ ब्रह्माचल पर्वत की शिखर पर स्थित मानगढ़ के अतिरिक्त मोरकुटी, दानगढ़ व विलासगढ़ के दर्शन हेतु भी जाया करते थे; वयोवृद्ध होने पर भी वे स्वयं रमणरेती की ब्रजयात्रा का सञ्चालन करते थे, ऐसा मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा । श्रीहरिनामदासजीमहाराज के पश्चात् रमणरेती आश्रम के सञ्चालक कई विशिष्ट संत हुए । वर्तमान में स्वामीश्रीशरणानन्दजीमहाराज के द्वारा रमणरेती (बालकृष्णलाल के ब्रजरज में लोटने का यह दिव्य स्थल) सञ्चालित है, इनके नेतृत्त्व में यह लीलास्थली सम्पूर्ण विश्व में विख्यात हो गयी है; इन्होंने रमणरती के यश को सर्वत्र बढ़ाया है। आश्चर्य है कि स्वामीजी अति सरल प्रकृति के हैं, जब भी मुझसे इनकी भेंट होती है, ये मुझे 'बड़े गुरुभाई' कहकर सम्बोधित करते हैं और मुझे अपने से बड़ा मानते हैं जबकि मैं बड़ा कैसे हो सकता हूँ ? मैं तो ब्रजवासियों की मधुकरी का याचक हूँ, ब्रजवास करते समय मैंने आजीवन भिक्षा में ब्रजवासियों की रोटी माँगकर जीवन–निर्वाह किया एवं आज तक मैं उनके परम पवित्र अन्न द्वारा पोषित हो रहा हूँ, मैं तो ब्रजवासियों का टुकड़खोर (ब्रजवासियों के विशुद्ध अन्न का भिक्षुक) हूँ। ऐसी स्थिति में ब्रजवासियों की रोटी के टुकड़ों का याचक (एक दरिद्र भिक्षु) बड़ा कैसे हो सकता है ? इतना अवश्य है कि मैं मानगढ़ से चलने वाली श्रीराधारानी ब्रजयात्रा का नेतृत्त्व करता हूँ; सन् १९८८ से आरम्भ हुई यह यात्रा पूर्णतया निःशुल्क है तथा प्रतिवर्ष नियमित रूप से ब्रज–परिक्रमा करती है । दो वर्ष पूर्व जब कोरोना महामारी का सारी दुनिया पर आधिपत्य हुआ, उस समय सरकार ने कार्तिक मास में होने वाली समस्त ब्रजयात्राओं पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया था, किसी को भी ब्रज–परिक्रमा की अनुमति नहीं दी गयी थी किन्तु श्रीजी की अद्भुत कृपा से उस संक्रमणकाल में भी 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' को प्रशासन द्वारा ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा की अनुमति प्राप्त हो गयी; केवल १२५ लोगों को ब्रजयात्रा में चलने का आदेश था किन्तु ६०० यात्री एक महीने के लिए परिक्रमा में सम्मिलित हुए। कोरोना काल की आपदा में यह एक रिकॉर्ड था, पूर्णतया असम्भव कार्य सम्भव हो गया और यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हो गयी, जबकि ऐसी आशा नहीं थी। कोरोनाकाल में एक माह की उस ब्रजयात्रा में ब्रज चौरासी कोस में परिभ्रमण करने पर भी एक भी ब्रजयात्री कोरोना से संक्रमित नहीं हुआ, यह राधारानी की बहुत बड़ी कृपा थी।

इस बीच स्वामीजी के सम्पर्क से मुझे ऐसी सूचना मिली कि उन्होंने कुछ भक्तों के साथ कैलाश मानसरोवर की यात्रा की थी। यद्यपि भारत के लिए यह बड़े गौरव का विषय है किन्तु मैं तो कूप मण्डूक हूँ और शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो मानसरोवर आदि पृथ्वी के समस्त तीर्थ तो ब्रज में ही श्रीराधारानी के चरणकमलों में स्थित हैं, जैसा कि ब्रजनिष्ठ महापुरुषों का कथन है –

कीरतिसुता के पग–पग में प्रयाग जहाँ,
केशव की कुञ्ज–केलि कोटि–कोटि काशी हैं।
यमुना में जगन्नाथ रेणुका में रामेश्वर,
बद्री–केदारनाथ फिरत दास–दासी हैं ॥

पृथ्वी के समस्त तीर्थ अपने उद्धार के लिए ब्रजभूमि में

आते हैं, इसलिए ब्रज में निवास करने वालों को ब्रज के बाहर स्थित तीर्थों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

स्वामीजी (श्रीगुरुशरणानन्दजीमहाराज) वर्तमान में अपने गुरुदेव (श्रीहरिनामदासजीमहाराज) की गद्दी पर विराजमान हैं और उन्हीं के स्वरूप हैं, यद्यपि ये मुझसे बड़े हैं, फिर भी मुझे अपने से बड़ा बताते हैं, यह इनका बड़प्पन है। स्वामी हरिनामदासजीमहाराज अत्यधिक सरल स्वभाव के थे, यह एक विलक्षण आश्चर्य है; मैं उनके द्वारा सञ्चालित बहुत सी ब्रजयात्राओं में सम्मिलित हो चुका हूँ, उनके जैसी सरलता मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखी। एक बार किसी साधु के द्वारा कोई छोटा–मोटा अपराध हो जाने के कारण उसे दण्ड देने के लिए स्वामीजी के पास लाया गया, किन्तु उन्होंने कहा – 'इन्हें तुरन्त छोड़ दो, ये तो गोपालजी का स्वरूप हैं। यहाँ (ब्रज में श्रीजी के दरबार में) दण्ड विधान नहीं है। ' यह घटना मेरे समक्ष घटित हुई थी। स्वामीजी के पश्चात् अन्य संतों ने रमण रेती का उत्तरदायित्व सँभाला। स्वामी श्रीगुरुशरणानन्दजी महाराज जब से यहाँ के सञ्चालक बने हैं, तब से रमण रेती का नाम भारत ही नहीं, वरन् विदेशों तक में विख्यात हुआ और इसके यश से सम्पूर्ण जगत पवित्र हो रहा है।

हमारे मान मन्दिर के परिकर में बहुत सी कन्यायें हैं। सायंकाल प्रतिदिन मानमन्दिर के आराधना–भवन 'रस–मण्डप' में नित्य नियम से संकीर्तन होता है और उस संकीर्तन में कन्यायें नृत्य करती हैं। एक बार स्वामी श्रीगुरुशरणानन्दजीमहाराज भी उस आराधना के दर्शन हेतु मानगढ़ पधारे थे। यद्यपि इनकी मर्यादा ऐसी है कि ये देवियों में नहीं जाते हैं किन्तु हम लोगों पर विशेष कृपा होने के कारण ये वहाँ गये और कन्याओं की नृत्य– आराधना का दर्शन किया। स्वामीजी इतने दयालु हैं कि एकबार मानमन्दिर की कुछ साध्वियाँ रमणरेती गयीं तो स्वामीजी ने उन्हें अपनी गाड़ी के द्वारा सम्पूर्ण रमणरेती क्षेत्र का दर्शन कराया। मानमन्दिर की साध्वियाँ प्रवचन करती हैं। देश–विदेश में यहाँ की कुछ साध्वियाँ श्रीमद्भागवत–कथामृत का वाचन भी करती हैं, यद्यपि स्त्रियों के द्वारा 'व्यास–गद्दी पर विराजमान होकर कथा कहना' परम्परा में नहीं है। श्रीराधारानी के ग्राम बरसाना में ये कन्यायें अखण्डवास कर रही हैं और नित्य रसमय गान और नृत्य के माध्यम से प्रिया–प्रियतम की आराधना करती हैं। श्रीजी के करकमलों द्वारा निर्मित गह्वरवन में सैकड़ों की संख्या में इन साध्वियों के द्वारा प्रतिदिन जो नृत्य–आराधना की जाती है, ऐसा भारत तो क्या विश्व में कहीं नहीं है। वस्तुतः ब्रज में आराधना तो नृत्य की पद्धति द्वारा ही की जाती है। सम्पूर्ण विश्व में महारास प्रसिद्ध हुआ, क्यों प्रसिद्ध हुआ ? उस त्रिगुणातीत महारास में रासमण्डल पर रासेश्वरी श्रीराधिकारानी विराजती हैं और अनन्त गोपिकाओं के मध्य श्रीजी को प्रसन्न करने व उनकी आराधना हेतु स्वयं रासेश्वर श्रीश्यामसुन्दर नृत्य करते हैं; ऐसा संसार के इतिहास में आज तक कभी घटित नहीं हुआ, यह अत्यधिक आश्चर्यजनक है। इस लीला में कोई मर्यादा नहीं है। मर्यादा क्या होगी, जब स्वयं त्रिलोकीनाथ 'रासेश्वरी' की नृत्य–गान करके आराधना करते हैं। भगवान् ने ब्रजलीला के अन्तर्गत समस्त लौकिक–वैदिक मर्यादाओं को तोड़ दिया और अनन्त जगत् को यह दिखाया कि श्रीराधारानी ही मेरी इष्ट हैं; उन्हीं वृषभानुनन्दिनी श्रीकिशोरीजी का गाँव है 'बरसाना', इस तथ्य से सभी अवगत हैं। अतएव उस बरसाने में जो कन्यायें प्रतिदिन श्रीजी की आराधना करती हैं, उन्हें व्यासगद्दी पर बैठने का अधिकार नहीं है – ऐसा कहने वाला न तो श्रीजी का उपासक है, न था और न कभी होगा। जहाँ परमेश्वर श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति, उनकी आत्मस्वरूपा 'श्रीराधिकारानी' साक्षात् विराजती हैं, वहाँ समस्त मर्यादायें समाप्त हो जाती हैं। सुधानिधिकार ने राधारानी की आराधना करने वाले (राधाराधक) कृष्ण को वन्दन किया है –

रसघनमोहनमूर्तिं विचित्रकेलिमहोत्सवोल्लसितम्।
राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे ॥

(श्रीराधासुधानिधि – २००)

भगवान् श्यामसुन्दर रसघनमोहनमूर्ति हैं, वे अद्भुत रसमयी केलि किया करते हैं किन्तु उनके मस्तक पर जो मयूरपंख सुशोभित है, जिसके कारण वे विश्वविख्यात हुए, वह मयूरपंख भी केवल भगवान् श्यामसुन्दर ही धारण करते हैं, अन्य किसी भी अवतार में प्रभु ने मयूरपंख धारण नहीं किया।

सबसे सरस 'राधा नामाराधन'

श्रीरमणरेती में हुए बाबाश्री के वक्तव्य (३०/१०/२०२२) से संकलित

कृष्णावतार में ही मोरपंखधारी श्रीप्रभु राधिकारानी के चरणों में विलोडन करते हैं – 'राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे' – ऐसे श्रीकृष्ण की हम उपासना करते हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ मर्यादा कहाँ है ? मर्यादा केवल यही है कि श्रीराधारानी की आराधना करो, जिनकी आराधना अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण कर रहे हैं, तब फिर वहाँ क्या संदेह है और इसीलिए उनको सर्वेश्वरी कहा गया है। सर्वेश्वर भगवान् की भी जो ईश्वरी हैं, वे हैं श्रीराधारानी। इसलिए मान मन्दिर की श्रीराधारानी ब्रजयात्रा में न कोई मर्यादा है, न कोई शुल्क है। धन के बिना दुनिया का कोई काम नहीं चलता है किन्तु आश्चर्य है कि राधारानी की कृपा से उनकी यात्रा ब्रज की सबसे बड़ी पद यात्रा बन गयी है। कोरोना काल में अन्य ब्रजयात्रायें बन्द हो गयीं थीं, उस समय हमारे यहाँ के प्रबन्धकों ने मुझसे पूछा कि कोरोना की ऐसी विभीषिका में यात्रा कैसे निकाली जाए तो मैंने कहा कि कोरोना आदि कुछ नहीं है, श्रीराधिकारानी के सामने कोरोना क्या चीज है, इसलिए राधारानी ब्रजयात्रा इस आपदा काल में भी चलेगी, चाहे शासन इसकी अनुमति दे अथवा न दे। शासन की ओर से सौ–सवा सौ से अधिक लोगों को यात्रा में ले जाने का आदेश नहीं था परन्तु मानिनी के मान मन्दिर की उस कोरोना कालीन ब्रजयात्रा में ६०० श्रद्धालुओं ने पूरे एक महीने तक ब्रजचौरासी कोस की परिक्रमा की, फिर भी न तो शासन की ओर से कोई प्रतिबन्ध लगाया गया और न ही अन्य किसी प्रकार की विघ्न–बाधा उपस्थित हुई, न ही कोई बीमार हुआ। इस ब्रजयात्रा का ब्रज के समस्त गाँवों में भरपूर सम्मान हुआ। यात्रियों के भोजन का प्रबन्ध भी ब्रजवासियों की ओर से किया गया, मान मन्दिर सेवा संस्थान को रसोई की व्यवस्था करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। सन् १९८८ से प्रारम्भ हुई श्रीराधारानी ब्रजयात्रा आज भी पूर्णतया निःशुल्क है, किसी व्यक्ति से ब्रजपरिक्रमा हेतु एक भी पैसा नहीं लिया जाता। स्वेच्छा से कोई कुछ सहयोग करना चाहे तो कर सकता है, चाहे वह ब्रजवासी हो अथवा ब्रज के बाहर का हो। सामान्य परिस्थितयों में इस यात्रा में लगभग पन्द्रह हजार से अधिक व्यक्ति चालीस दिनों तक ब्रज परिक्रमा करते हैं। यह सब एकमात्र श्रीराधिकारानी की ही कृपा है, अन्यथा मैं तो एक छोटा सा आदमी हूँ, मैं न तो महन्त हूँ और न ही श्रीमहन्त हूँ। मैं तो केवल राधे–राधे कहता हूँ और कुछ नहीं करता हूँ। श्रीराधिकारानी के यश से परिपूर्ण ग्रन्थ श्रीराधासुधानिधि के अनुसार –

यज्ञापः सकृद् एव गोकुलपतेराकर्षस्तत्क्षणाद्
यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत् तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः
श्रीकृष्णोऽपि तद् अद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ॥

(श्रीराधासुधानिधि – ९४)

जिन श्रीजी का 'राधा' नाम स्वयं श्रीकृष्ण जपते हैं। सकृद् एव गोकुलपतेराकर्षस्तत्क्षणाद् – सकृद् अर्थात् एक बार राधा नाम का उच्चारण कर लो तो गोकुलपति श्रीकृष्ण उसी समय आकर्षित हो जाते हैं और सोचते हैं – 'ओहो ! किसने राधा नाम का उच्चारण किया ?' श्रीजी का नाम लेने वाला समस्त पुरुषार्थों के प्रति तुच्छ बुद्धि रखता है। उसके लिए पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि अत्यधिक तुच्छ हैं। उसका यही भाव रहता है कि मैं राधा नाम का उच्चारण करता हूँ तो मुझे पुरुषार्थ चतुष्ट्य से क्या प्रयोजन है, राधा नाम के अतिरिक्त किसी अन्य साधन को करने की क्या आवश्यकता है, क्योंकि – **यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः** – जिस राधा नाम से अंकित मन्त्र अर्थात् केवल राधा नाम का जाप स्वयं माधव प्रीतिपूर्वक करते हैं, निरन्तर राधा–राधा नाम जपते हैं, इसमें ह्लीं, क्लीं आदि किसी अन्य विधान का संयोग नहीं करते, उनके पास इतना समय ही नहीं है कि राधा नाम के साथ ह्लीं, क्लीं प्रयुक्त करें। श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं कि वे ही दो अक्षर 'रा–धा' मेरे हृदय में स्फुरित हों।

कालिन्दीतटकुञ्जरमन्दिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पद
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः।

श्यामसुन्दर यमुना तट पर जाकर किसी एकान्त कुञ्ज में बैठकर योगीन्द्रों की तरह एकाग्रचित्त के साथ राधा नाम जपते हैं। केवल जप ही नहीं करते अपितु श्रीराधारानी के चरणकमलों का ध्यान करते हैं। राधा नाम वे सदा ही जपते हैं। कैसे जपते हैं, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर श्रीकृष्ण 'राधा' नाम का जप करते हैं। 'सदा' का आशय है कि फिर न तो वे सृष्टि निर्माण व पालन का ध्यान रखते हैं, संसार के सारे कार्यों को भूल जाते हैं, उनके पास न कोई मर्यादा है और न ही कोई बन्धन है। यहाँ तक कि अपने भक्तों की सुरक्षा सम्बन्धी विशेष कर्तव्य को भी भूल जाते हैं, भक्त- परिपालन को भी छोड़ बैठते हैं; ऐसा परम विचित्र यह 'राधा' नाम है। श्रीराधारानी के अनन्य भक्त गह्वरवनवासी श्रीकिशोरीअलीजी का राधानाम-माहात्म्य के सन्दर्भ में यह विशेष पद है – **'आधो नाम तारिहैं श्रीराधा।'** पूरा राधा नाम कहने की आवश्यकता नहीं है, केवल 'रा' कह दो, इतने से ही करुणामयी कृपा कर देंगी। केवल 'रा' ही क्यों कहा जाऐ तो किशोरी अलीजी आगे कहते हैं – **'रा के कहे रोग सब मिटिहैं'** सबसे बड़ा और अतिशय भयावह रोग है भवरोग, भवरोग जितने भी हैं, जितनी भी इनकी शाखायें हैं, वे सब मात्र आधे अक्षर 'रा' के उच्चारण से ही भस्म हो जायेंगे। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश आदि समस्त पञ्च क्लेश 'रा' के उच्चारण मात्र से समाप्त हो जाते हैं, इनका कोई अस्तित्त्व ही नहीं रह जाता। **'धा के कहे मिटै भवबाधा॥'** 'धा' कहने पर तो समस्त भव-बाधाओं का समूल विनाश हो जाता है। **'जुग अक्षर की महिमा को कहै'** युग अक्षर 'राधा' की महिमा तो अवर्णनीय है। राधानाम की अचिन्त्य महिमा को न तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधीश्वर श्रीकृष्ण कह सकते हैं और अनन्त ब्रह्माण्ड तथा उनके परे अनन्त भगवद्धामों में भी इस महिमा को कहने वाला न कोई है, न आज तक कोई पैदा हुआ, न भविष्य में भी कोई होगा। **'गावत वेद-पुराण अगाधा।'** फिर भी जीवों के कल्याण के लिए वेद-पुराणों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार राधा नाम की अगाध महिमा का गायन किया है। **'अली किशोरी नाम रटत नित, लागी रहत समाधा॥'** श्रीकिशोरीअलीजी कहते हैं कि मैं अपनी जिह्वा से सदा राधा नाम रटता रहता हूँ और ऐसा करने पर निर्विकल्प समाधि से भी श्रेष्ठ प्रेम की समाधि लग जाती है। समाधि दो प्रकार की होती है – सविकल्प एवं निर्विकल्प। सविकल्प समाधि आठ प्रकार की होती है तथा निर्विकल्प समाधि तो केवल एक ही प्रकार की होती है। 'राधा' नाम ग्रहण करने पर समाधियों के तथा अन्य समस्त प्रकार के भेद समाप्त हो जाते हैं। इसलिए केवल 'राधा' नाम रटो और कोई साधन मत करो, 'राधा' नाम से ही सहज में सम्पूर्ण प्रकार की समाधियों की परिपूर्णतम अवस्था प्रेम-समाधि की उपलब्धि हो जाती है। अतः प्रेम से गाओ –

राधा राधा राधा राधा राधा राधा ...
राधे राधे राधे राधे राधे राधे राधे...

एक बार मैंने सन्त शिरोमणि अनन्यब्रजनिष्ठ अपने बाबा श्रीप्रियाशरणजी महाराज से कहा – 'महाराजश्री ! आप मुझे मन्त्र प्रदान कीजिये क्योंकि यह परम्परा है।' मेरी बात सुनकर पूज्यमहाराजश्री ने कहा – 'यह परम्परा हमारे यहाँ नहीं है।' मैंने पूछा – 'ऐसा क्यों ? क्या आप वैष्णव परम्परा को नहीं मानते हैं ?' महाराजश्री ने उत्तर दिया – 'हमारी तो एक ही परम्परा है – **"परम धन राधा नाम अधार। जाहि श्याम मुरली में टेरत निशदिन बारम्बार॥"** श्यामसुन्दर अहर्निश राधा नाम रटते रहते हैं, एक पल को भी उन्हें अवकाश नहीं है। **"जन्त्र - तन्त्र अरु वेद मन्त्र में, यही कियो निरधार।"** श्रीबाबाप्रियाशरणजी महाराज ने आगे कहा – 'यही कारण है कि हम लोग राधा नाम के अतिरिक्त और किसी नाम अथवा मन्त्र का जप नहीं करते हैं। तुम भी राधा नाम का जप करो।' मेरे इन सद्गुरुदेव महाराज का अखण्ड रूप से राधा नाम जप होता रहता था। मैंने इस बात को स्वयं अपने नेत्रों से देखा है कि निद्रा के समय भी उनकी जिह्वा से स्वाभाविक रूप से राधा नाम का उच्चारण होता रहता था। मैं स्वयं तो इतनी उच्चतम अवस्था तक अभी न पहुँचा हूँ किन्तु ऐसे अनन्य राधानामाराधक महापुरुष का मैंने दर्शन अवश्य किया है, उनका उच्छिष्ट प्रसाद पाया है और इतने से ही मैं सन्तुष्ट हूँ।

सच्चा साथी 'श्रीभगवन्नाम'

बाबाश्री के पदगान-सत्संग (१०/११/२०२२) से संकलित

भक्तमाल में भक्त कामध्वजजी की कथा वर्णित है कि किसी सघन वन में उनका निधन हो गया; उस समय वहाँ उनके पार्थिव देह का दाह-संस्कार करने वाला भी कोई नहीं था; ये श्रीरघुनाथजी के भक्त थे। अपने भक्त का अन्तिम संस्कार करने के लिए स्वयं प्रभु श्रीरामजी जाने के लिए तैयार हुए तो उनके अनन्य सेवक श्रीहनुमन्तलालजी ने उन्हें रोक दिया और वे स्वयं श्रीरामजी के उन परम भक्त के मृतक देह का अग्नि-संस्कार करने के लिए उस वन में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर श्रीहनुमानजी ने स्वयं अपने हाथों से लकड़ियाँ एकत्रित कीं और राम भक्त का दाह संस्कार कर दिया। उनकी चिता के धुएँ के स्पर्श से वन के समस्त भूत-प्रेतों का उद्धार हो गया। एक भूत उस समय अपने समुदाय से कहीं दूर चला गया था। जब वह उस स्थान पर लौटकर आया और अपने साथी प्रेतों की विशुद्ध भक्त की चिता के धुएँ से सद्गति को देखा तो वह अपने दुर्भाग्य पर पश्चात्ताप करते हुए आत्मोद्धार हेतु आर्त्त स्वर से विलाप करने लगा, उसके करुण विलाप को उस जंगल में रहने वाले एक महात्मा ने सुना तो उन्होंने लकड़ियाँ बीनकर पुनः उस चिता की भस्म में रखकर अग्नि प्रज्वलित की, उससे जो धुआँ निकला, उसके स्पर्श से इस प्रेत का भी उद्धार हो गया। इसीलिए इस पद की यह पंक्ति है – '**मैं तेरा हूँ तू ही हमारा है, नहीं कोई यहाँ हमारा है। कोई भी न मिला ज़माने में, ढूँढ़ डाला ये जगत सारा है।**' संसार में जब कोई भी तुम्हारा नहीं हो, यहाँ तक कि मृत्यु के पश्चात् तुम्हारे मृतक देह का अन्तिम संस्कार करने वाला भी कोई न हो, उस समय केवल प्रभु और उनके भक्तगण ही काम आते हैं।

'बने साथी हजारों ही मेरे'

इस दुनिया में हजारों लोग हमारे साथी बनते हैं किन्तु **'संग जाता न कोई प्यारा है।'** इसलिए

'छोड़ दे छोड़ दे सभी रिश्ते'

सबसे सम्बन्ध छोड़ना कठिन है किन्तु फिर भी दुनिया के सभी रिश्ते छोड़ दो, क्योंकि **'डूबा इनका लिया सहारा है'** संसार के लोगों से सम्बन्ध जोड़ने से, उनसे प्रेम करने का क्या परिणाम होगा ?

स्वार्थियों से जो प्रीति की तूने,
फूटा आँखों का बीच तारा है।

जब आँखों के तारे फूट जाते हैं तो आँख बेकार हो जाती है। डॉक्टर मरीज से कहता है कि तुम्हारी रेटिना निष्क्रिय हो चुकी है अर्थात् तुम्हारी नेत्र ज्योति समाप्त हो गयी है, अब इसकी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती है। इसी प्रकार संसारियों से सम्बन्ध जोड़ने पर सर्वनाश होता है। इनसे प्रेम करने पर परमार्थ के पथ पर कोई लाभ नहीं होता, हानि ही होती है और भक्ति नष्ट हो जाती है। इन स्वार्थी लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने पर अवश्य ही विनाश होता है, अतः इनका संग छोड़ देना चाहिए। '**मेरा सिर तेरे दर पै ही रहे, मेरी किस्मत का तू सितारा है। याद तेरी जो मेरे दिल में रहे, क्या हुआ डूबे बीच धारा है। तुझे भूला रहा भटकता मैं, याद तेरा ही इक सहारा है।**' इस बात को सदैव स्मरण रखो कि गीता में भगवान् ने कहा है – **अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥** (श्रीगीताजी ८/५)

अन्तकाल में जो मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह मुझे ही प्राप्त करता है। उसका निश्चित ही कल्याण होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसलिए **'याद तेरी जो मेरे दिल में रहे, क्या हुआ डूबे बीच धारा है।'** क्या हुआ जो शरीर छूट गया, यदि उस समय भगवान् की स्मृति बनी रही तो निश्चित कल्याण है। भगवान् की यह प्रतिज्ञा है कि हे अर्जुन ! अन्तकाल में जो मेरा स्मरण करते हुए देह त्याग करता है, वह अवश्य ही मेरे पास आता है, भवसागर से वह पार हो जाता है, उसका अवश्य ही कल्याण होता है।

ऐसी उपलब्धि के लिए अन्तकाल में भगवान् का स्मरण अवश्य होना चाहिए किन्तु अन्तिम समय भगवान् की स्मृति नहीं हो पाती है। जीवन भर जिससे प्रेम किया, अन्त में उसी का स्मरण होता है, भगवान् की याद नहीं आती है। **'याद मीठी है मिश्री से ज्यादा,**

तेरे बिना ये जगत खारा है।'

भगवान् की स्मृति मिश्री से भी अधिक मीठी है। उनके स्मरण के बिना, सम्पूर्ण विश्व समुद्र के जल के समान खारा है। **'चाहे कितनी भी सजा दे कोई,**

बिना तेरे मिट्टी का गारा है।'

संसार में अनेक प्रकार के कष्ट हैं, अनेक तरह के दण्ड हैं, चाहे कोई कितनी भी सजा दे दे किन्तु अन्त समय में यदि भगवान् का स्मरण नहीं हुआ तो यह शरीर केवल मिट्टी का गारा है। **'सोना चाँदी हीरा माणिक मोती,**

हमने सब कुछ तुझी पे हारा है।'

सब कुछ भगवान् को अर्पित कर दो। अपने पास सोना, चाँदी, हीरा, माणिक और मोती आदि संसार में बहुमूल्य माने जाने वाले पदार्थ बिलकुल भी मत रखो। क्यों इनका संग्रह करते हो ? ये सब काल के अस्त्र हैं। केवल प्रभु का नाम–कीर्तन करो, उनका गुणगान करो और उनका स्मरण करो, इसके अतिरिक्त आत्मनाश का कोई कार्य मत करो। **ढूँढा करती हैं आँखें तुमको ही,**

यही तो बचा बस एक चारा है।

तू नहीं मेरे सामने प्यारे,

तेरे नाम का ही इक सहारा है।

हे श्यामसुन्दर ! तू यदि मेरे नेत्रों के सामने नहीं है तो कोई परवाह नहीं है, तेरा नाम तो मेरे पास है, वही मेरे लिए जीवन का एकमात्र सहारा है। देखो, यह भारतवर्ष है। यहाँ सनातन धर्म की प्रधानता है। सनातन धर्म के अनुयायियों की जब मृत्यु होती है तो उनकी शवयात्रा में लोग बोलते हैं – 'राम नाम सत्य है।' क्योंकि सत्यस्वरूप भगवान् हमारे समक्ष नहीं हैं किन्तु उनका नाम तो हमारे पास है, इसलिए घबराओ मत। यही कारण है कि शवयात्रा में जाते समय लोग केवल यही कहते हैं – राम नाम सत्य है। किन्तु मुख से ही ऐसा कहते हैं, यदि वे यथार्थ में हृदय से राम नाम को सत्य मान लें तो अवश्य ही उनका कल्याण हो जाए।

मेरे जीवन की एक सच्ची घटना है, जब मैं ब्रजवास करने के लिए अपने आरम्भिक दिनों में मानगढ़ पर रहा करता था, उन्हीं दिनों गाँव में एक वयोवृद्ध ब्रजवासी रहते थे, वे मुझसे स्नेह रखते थे। जब उनका अन्तिम समय आया तो मैं उनके घर गया तो उन्होंने मुझसे कहा – 'बाबा ! मेरे पुत्र को बुला दो।' मैंने सोचा कि अब इनको मैं क्या ज्ञान दूँ किन्तु यह कितना दुःखद है कि मृत्यु के मुख में जाते समय भी मनुष्य मोहवश अपने पुत्र की याद करता है, जबकि पुत्र कल्याण नहीं कर सकता है। उस वृद्ध व्यक्ति ने पुत्र का स्मरण करते हुए देह का त्याग कर दिया। वस्तुतः तो इस संसार में केवल राम नाम ही सत्य है, बाकी सब कुछ असत्य है। अतः केवल भगवान् का स्मरण करो, उनके नाम का स्मरण करो।

'लोक और लाज जला दिया मैंने'

लोक की लाज को जला दो, इससे कोई लाभ नहीं होने वाला है। केवल प्रभु का नाम ही सत्य है, इसीलिए भारतवर्ष में शव के अन्तिम संस्कार को जाते समय इसी वाक्य को जोर–जोर से बोलने की परम्परा चलायी गयी – 'राम नाम सत्य है।' अरे भाई ! सत्य तो केवल प्रभु का नाम ही है, इसी का स्मरण करो, इसी का गान करो। सनातन धर्म की यह परम्परा केवल भारत में ही है, दुनिया में अन्यत्र किसी भी देश में ऐसी महान परम्परा नहीं है। **'लोक और लाज जला दिया मैंने,**

वेद मर्यादा को अब जारा है।'

लोक–लाज अर्थात् लोक–मर्यादा को जलाने के उपरान्त अब वेद–मर्यादा को भी जला देना चाहिए क्योंकि वेद का उद्घोष है – **'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव।'** अर्थात् 'माता देवता है, पिता देवता है' ये सब व्यर्थ की बात (लौकिक धर्म) है। वास्तव में न तो माता देवता है और न ही पिता देवता है। देवता तो केवल प्रभु का नाम है, अतः सदैव उसी को गाओ, उसी का स्मरण करो।

भक्ति से मोह–शमन

बाबाश्री के पदगान–सत्संग (१०/११/२०२२, १५/१/२०१२) से संकलित

अज्ञान के समुद्र में जीव इस तरह डूबा है कि एक बार एक व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो रहा था, उसके आँगन में बहुत– सा धन गड़ा था और निकट ही खूँटे से गाय बँधी थी। वह व्यक्ति मरणासन्न अवस्था में भी धन की ओर संकेत करते हुए अपने पुत्रों से बारम्बार कह रहा था – 'उस स्थान पर खोदो, इस स्थान पर खोदो।' उसके पुत्र समझ नहीं पा रहे थे और धन की आशा से सारा आँगन खोद डाला गया किन्तु धन की वास्तविक स्थिति का ज्ञान न होने से धन का संकेत करते हुए ही उस व्यक्ति की मृत्यु हो गयी। विचार करो, क्या धन की स्मृति में शरीर त्याग करने वाले का कल्याण हो सकता है ? इसलिए धन का त्याग कर दो, धन को भूल जाओ।

छाया अन्धकार सारी दुनिया में,
मिला तेरे नाम का उजारा है।

'भारतवर्ष' दुनिया का सर्वोत्तम देश है, क्योंकि यहाँ मृत्यु के पश्चात् शव को दाह–संस्कार के लिए ले जाते समय सभी लोग कहते हैं – 'राम नाम सत्य है' अर्थात् केवल प्रभु का नाम ही सत्य है। सत्य केवल भगवान् और उनका नाम है, ऐसा ही उच्च स्वर से कहते हुए भारतवासी लोग शवयात्रा में जाते हैं। विश्व में भारत के अतिरिक्त ऐसा अन्य कोई देश न था, न है और न होगा।

'सुख संपत्ति जग की तेरे बिना,
सिर्फ इक बोझ बड़ा भारा है।'

धन–सम्पत्ति की तृष्णा और आसक्ति का त्याग कर दो, यदि ऐसा नहीं कर सके तो अन्त समय में उसी का स्मरण होगा और सम्पत्ति की याद करके मरोगे तो यह एक बोझ है, यह बोझ तुमको कभी भी उठने नहीं देगा, बल्कि भवसागर में डुबो देगा। **'फँसा अभागा जो प्रपंचों में, दीनों के नाथ को बिसारा है।'** एकबार मुम्बईनिवासी भारत का बहुत बड़ा धनी व्यक्ति मानमन्दिर पर आया था, उसने मुझसे कहा कि मैं अपने मझले (बीच के) पुत्र के कारण बहुत दुःखी हूँ, यहाँ तक कि उसकी स्मृति भी मुझे अपार कष्ट देती है। मैंने बड़ी कठिनाई से अपार सम्पत्ति अर्जित की किन्तु वह सिनेमा की अभिनेत्रियों के साथ भोग–विलास करने के लिए विदेशों में जाता है और वे सिने–तारिकायें एक रात का ही दो लाख रुपये शुल्क लेती हैं। इस तरह मेरा पुत्र मेरी मेहनत से कमायी गयी पूँजी को अपने काम–विलास में ही नष्ट किये दे रहा हैं, इसलिए मैं बहुत दुःखी हूँ। उस धनी व्यक्ति की बात सुनकर मैंने उससे ऐसा कहा तो नहीं किन्तु मन में सोचा कि जिसने अपार परिश्रम से संग्रह किये गये तुम्हारे धन को नष्ट कर दिया, ऐसे नालायक पुत्र का स्मरण क्यों करते हो, उसको भूल जाओ। किन्तु मनुष्य की दशा इतनी शोचनीय है कि ऐसे नीच पुत्र को भी नहीं भूल सकता, उसका त्याग नहीं कर सकता और उसके काले कारनामों को याद करके केवल रोता है। वह अरबपति व्यक्ति था परन्तु उसका सारा धन फिल्म अभिनेत्रियाँ हड़प ले गयीं। सिनेमा की अभिनेत्री भी क्या है, वास्तव में तो केवल मल–मूत्र की पिण्डी ही है, उसका बाह्य शरीर कितना भी सुन्दर हो, उसके अन्दर तो घ्रणित मल–मूत्र ही भरा है, शौच करने पर उसके शरीर से गुलाब का फूल तो विसर्जित होगा नहीं, परन्तु उस धनवान व्यक्ति के पुत्र ने ऐसी नीच स्त्रियों पर उसके अत्यधिक मेहनत से संग्रह किये गये विपुल धन को फूँक दिया और पिता अपने पुत्र के काले कृत्यों को देखता रहा, रोता रहा, कुछ कर नहीं सका; दुनिया की ऐसी हालत है। इसी बात को सूरदासजी ने अपने पद में कहा है – **'कठिन जो गाँठ पड़ी माया की तोड़ी जाय न झटके। सभी बंधन जो मोह ममता के, तोड़ा झटके से दिया टारा है।'** एक झटका दे दो तो यह मोह की बेड़ी टूट जाएगी किन्तु मनुष्य झटका क्या देगा, वह बेचारा तो स्वयं ही माया के झटके में मर जाता है। एक झटका दे दो, बन्धन टूट जायेगा, पूर्ण रूप से टूट जायेगा परन्तु मनुष्य झटका नहीं दे पाता और मोह–ममता के झटके में स्वयं ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। **'सभी डर आपत्तियों के जो थे, उनको कूड़े में दिया**

डारा है।' आपत्तियों (मुसीबतों) के जितने भी डर हैं, उन सबको कूड़े में फेंक दो। ये निःसार हैं किन्तु मनुष्य इन्हें कूड़े में नहीं फेंक सकता, कैसे फेंकेगा, धन फेंक नहीं सकता, सोना–चाँदी फेंक नहीं सकता, स्वयं कूड़े में चला जायेगा परन्तु इन तुच्छ पदार्थों का त्याग नहीं कर सकता। **'लोक परलोक की सभी चिंता, चिता बना इन सबको जारा है।'** लोक–परलोक की समस्त चिन्ताओं को चिता में जला दो किन्तु स्थिति यह है कि हम इन चिन्ताओं को नहीं जलायेंगे अपितु स्वयं ही जल जायेंगे; संसार की आसक्ति का यही परिणाम होता है। यत्न करने पर भी मन की मैल नहीं हटती है। मोह से उत्पन्न मैल को आरम्भ से ही इकट्ठा न किया जाए तो अधिक अच्छा है। **'नयन मलिन परनारि निरखि मन'** स्त्रियों को देखने की जो आदत है, इसके द्वारा पुरुष ऐसा मैल एकत्रित कर लेता है, जो मिटता नहीं है। **'मलिन विषय संग लागे'** पुरुष 'स्त्रियों' को देखता है और इसके द्वारा उत्पन्न मैल कभी हटती नहीं है, इसी तरह स्त्री 'पुरुषों' को देखा करती है। **'हृदय मलिन वासना मान मन'** 'हृदय' वासना से गन्दा हो जाता है और फिर कभी शुद्ध नहीं होता है। **'जीव सहज सुख त्यागे'** ऐसा होने से जो जीव का सहज सुख है, वह कभी नहीं प्राप्त होता है। **'मोह जनित मल त्याग विविध विधि, कोटिउ जतन न जाए।'** सबसे बड़ा मल है निन्दा सुनना और निन्दा करना **'परनिन्दा सुनि श्रवण मलिन भये'** वाणी दूषित कैसे होती है ? **'वचन दोष पर गाये'** दूसरे की निन्दा कहने से अपने अन्दर ऐसा मल पैदा हो जाता है, जो कभी मिटता नहीं है। इस तरह से सब प्रकार के मल का बोझ जीव के पास लिपट जाता है और इससे भगवान् के चरण–कमल दूर हो जाते हैं। **'सब प्रकार मल भार लाग निज'** कानों में मल, वाणी में मल तथा हृदय और आँखों में मल भर जाता है। आँखों में मल प्रवेश करता है परस्त्री का दर्शन करने से, कानों में मल भरता है परनिन्दा सुनने से, हृदय में मल भरता है वासना से तथा 'वाणी' मल से दूषित होती है परदोष कथन से। **'सब प्रकार मल भार लाग निज, नाथ चरण बिसराये। तुलसीदास व्रत दान ज्ञान तप, सिद्धि हेतु श्रुति गावै॥'** मनुष्य तप करता है, व्रत और दान करता है किन्तु इन साधनों से मल नष्ट नहीं होते हैं और बिना मल के नष्ट हुए भगवान् के चरणों में प्रेम उत्पन्न नहीं होता है। भगवान् का प्रेम यदि हृदय में उत्पन्न हो जाये तो वह ऐसा जल है कि समस्त मलों को धो देता है – **'राम चरण अनुराग नीर बिनु, मल अति नाश न पावै।'** गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है – **'छूटइ मल कि मलहि के धोएँ'** मल को मल से धोने पर मल नहीं छूटता है। उसी प्रकार अन्तःकरण के मल को धोने के लिए – **प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥** (रामचरितमानस उ.का. – ४९) वसिष्ठ मुनि ने भगवान् राम से कहा कि जब तक आपके चरणों का अनुराग हृदय में उत्पन्न नहीं होता, तब तक अन्तःकरण का मल कभी नहीं मिट सकता। भगवान् के चरणों में प्रेम के लिए भक्त–संग आवश्यक है। बिना भक्त–संग के भगवान् के चरणों में प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता है। भक्त–संग से अति शीघ्र भगवान् के चरणकमलों के प्रति प्रेम का उदय हो जाता है। तब फिर स्वतः ही अन्तःकरण के समस्त मलों का नाश हो जाता है। भगवान् के चरणकमलों में अनुराग हो जाए, इसके लिए उनकी लीला, उनके चरित्रों का गायन किया जाता है, जो कि आरम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत ऊँचा साधन नहीं है किन्तु भगवान् की लीला के गान से बहुत शीघ्र ही भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए कृष्णलीला कभी–कभी हुड़दंग–सी लगती है, जैसे ग्वालबाल गौचारण करते हैं तो उनके मध्य हास–परिहास होता है। इस प्रकार की लीला के प्रति साधारण व्यक्ति के मन में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है। ग्वालबालों के साथ कृष्ण की लीला को देखकर तो स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को मोह हो गया। उन्होंने देखा कि गोपाल तो अपने सखाओं की जूठन खा रहा है, यह कैसा भगवान् है ? लेकिन बाद में भगवान् की कृपा से ब्रह्माजी सब समझ गए और ब्रज व ब्रजलीलाओं के गुणगान में निष्ठा हो गई।

श्रीभगवान् ही परम पति

बाबाश्री द्वारा निःसृत श्रीभागवत सप्ताह कथा (२३/२/१९८५) से संकलित

श्रीभगवान् कहते हैं – जब जीव को मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है तो पिता के वीर्य द्वारा माता के उदर में वह प्रवेश करता है। वहाँ एक रात में ही घोरुआ (कलल) बन जाता है, पाँच रात में बुलबुला बन जाता है, दस दिन में बेर की तरह हो जाता है फिर अण्डाकार हो जाता है। एक महीने में उसके सिर बन जाता है, दो महीने में हाथ–पाँव बन जाते हैं, तीन महीने में नाख़ून, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री–पुरुष के चिह्न बन जाते हैं, चौथे महीने में उसके माँस आदि सातों धातुएँ बन जाती हैं, पाँचवें महीने में उसे भूख–प्यास लगने लगती है तथा छठे महीने में वह माता के पेट में घूमने लगता है तब माता को पता चल जाता है कि मेरे गर्भ में शिशु है। माता के गर्भ में जीव को कीड़े काटते हैं। उसका सिर पेट की ओर झुका रहता है तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं। सातवें महीने में उसे कुछ ज्ञान होता है, ज्ञान होने के बाद वह भगवान् की स्तुति करता है। एक बात ध्यान देने योग्य यह है, आचार्य लोग लिखते हैं कि गर्भ में सभी जीव भगवान् की स्तुति नहीं करते हैं क्योंकि सबको इतना ज्ञान नहीं होता है। चार–पाँच प्रकार के जीव ही गर्भ में ज्ञान प्राप्त करते हैं। एक तो देवता लोग, उनको भी गर्भ में ज्ञान हो जाता है या उत्तम ऋषि लोग या अन्य बहुत से जन्म के पुण्य वाले लोग। उत्तम से मतलब है भक्त लोग। आज जो तुम भगवद्भक्ति कर रहे हो तो यदि तुम्हारा अगला जन्म भी होगा तो तुमको गर्भ में ही ज्ञान हो जायेगा और तुम गर्भ में ही भगवान् कृष्ण को पुकारने लगोगे। भक्ति बेकार नहीं जाएगी। बाकी जो संसारी लोग हैं, उन्हें गर्भ में ज्ञान नहीं होता है, जैसे मल–मूत्र का पिण्ड पेट के भीतर पड़ा रहता है, वैसे ही वे भी पड़े रहते हैं। जिनको ज्ञान हो जाता है, वे जीव गर्भ के भीतर भगवान् की स्तुति करते हैं – 'हे प्रभो ! मैं आपकी शरण में हूँ।' श्रीधरस्वामीजी अपनी टीका में लिखते हैं कि जीव गर्भ में कृष्ण की स्तुति करता है। ऐसा क्यों ? क्योंकि 'कृष्ण' मनुष्य के सबसे समीप में हैं, कैसे ? श्लोक को देखो –

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्त–
नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम्।

(श्रीभागवतजी ३/३१/१२)

नंगे चरण भगवान् अपने कृष्णावतार में ही दौड़ते हैं ब्रज में। श्रीधर स्वामी जी और भागवत के समस्त टीकाकार आचार्यों ने 'चलच्चरणारविन्दम्' का अर्थ लिखा है – हे कृष्ण ! मैं तेरी शरण में हूँ। क्यों ? क्योंकि इनसे बड़ा दयालु और कौन है ? इसलिए जीव गर्भ में श्रीकृष्ण की स्तुति करता है और कहता है कि मैं इस गर्भ के भीतर जल रहा हूँ। हे प्रभो ! तुम्हारी शरण में हूँ। आप प्रकृति – पुरुष से परे हैं, मैं आपकी वंदना करता हूँ। बिना महापुरुषों की कृपा, बिना महापुरुषों का संग किए जीव भगवान् को नहीं पा सकता है। इसलिये जाओ संतों के पास, जो भगवद्भक्त हैं। संत का मतलब यह नहीं है कि जिन्होंने वेश धारण कर लिया है। जो सच्चे भक्त हैं, उनके चरणों में नाक रगड़ो, भवसागर के पार चले जाओगे –

संतन के संग लाग रे तेरी अच्छी बनेगी।
संतन के संग हरि बिचरत हैं,
ज्यों बछरा गौ लागि रे , तेरी.....
"युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण" –

(श्रीभागवतजी ३/३१/१५)

महापुरुषों की कृपा बिना कल्याण कैसे होगा, इसलिए उनके पास जाओ। जीव गर्भ में भगवान् की स्तुति करता हुआ आगे कहता है – 'हे प्रभो ! मैं आपका भजन करता हूँ, मैं दूसरे शरीर (माता के शरीर) में पड़ा हुआ हूँ, पास में जठराग्नि जल रही है।' यह गर्भ क्या है, मल–मूत्र का कुआँ है। जैसे पुराने जमाने में शौचालय होते थे, उसमें नीचे एक अंध कूप बना दिया जाता था, उसमें जीवन भर मल त्याग करने पर भी उस अन्धकूप का गड्ढा कभी भरता ही नहीं था। इसी प्रकार यह गर्भकूप है, इस गर्भकूप में जो प्राणी पड़ा रहता है, वह नौ महीने तक

उसी मल के कूप में पड़ा रहता है, ऐसा कुआँ जो कभी भरता नहीं है। जीव कहता है – मैं अपने दिन गिन रहा हूँ कि इस कुएँ से बाहर कब निकाला जाऊँगा ? आपने मुझे जो ज्ञान दिया है, इसका ऋण मैं कैसे चुका पाऊँगा ?

स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः
को नाम तत्प्रति विनाञ्जलिमस्य कुर्यात् ।

(श्रीभागवतजी ३/३१/१८)

आपने जो कृपा की है, यह कृपा ही आपके उपकार का बदला है। इस कृपा से ही आप संतुष्ट हो जाइये। आपको हाथ जोड़ने के सिवाय मैं और क्या कर सकता हूँ ? इस प्रकार स्तुति करता हुआ जीव अंत में एक बात और बोला कि कितना भी कष्ट इस गर्भ के भीतर मुझे है फिर भी इस गर्भ के बाहर आप मुझे मत निकालिए।

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं
गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ।

(श्रीभागवतजी ३/३१/२०)

भगवन् ! मुझे इस गर्भ में ही पड़ा रहने दीजिये क्योंकि बाहर तो और भी ज्यादा अँधेरा है, उससे तो यह मल का घर ही अच्छा है क्योंकि इसमें पड़ा हुआ मैं किसी चीज में आसक्त तो नहीं हो रहा हूँ और बाहर तो लड्डू–पूड़ी–कचौड़ी, स्त्री–पुत्र, धन–मकान आदि आसक्ति की कितनी जगहें हैं कि मनुष्य उनसे छूट ही नहीं सकता। यहाँ गर्भ में तो मैं सोच रहा हूँ कि माया के बंधन से छूट जाऊँ और आपकी याद कर रहा हूँ। बाहर आकर तो स्त्री–पुत्र में आसक्त होकर मैं आपको भूल जाऊँगा और यही कहूँगा – जय–जय बेटा, जय–जय बहू अर्थात् दिन–रात इन्हीं के मोहपाश में जकड़ा रहूँगा, उससे छूट नहीं पाऊँगा इसलिए प्रभो ! मुझे इसी गर्भ में पड़ा रहने दीजिये। मैं व्याकुलता को छोड़कर अपना उद्धार करूँगा जिससे कि मुझे पुनः यह दुःख न मिले। हृदय में भगवान् विष्णु के चरणों को स्थापित कर बहुत शीघ्र मैं अपना उद्धार कर लूँगा। भगवान् कपिल कहते हैं – जीव जब इस प्रकार भगवान् की स्तुति करता है तो प्रसूति–वायु उसे गर्भ से ढकेल कर बाहर फेंक देती है और इस प्रकार गर्भ से बाहर आकर उसका जन्म हो जाता है। बाहर वह मल–मूत्र और खून में लिपटा रहता है क्योंकि जब जीव गर्भ के बाहर आता है तो उसके साथ गर्भ की सब गन्दगी भी बाहर निकलती है। जिस प्रकार मल का कीड़ा मल में रेंगता है, उसी प्रकार वह जीव भी उसी गन्दगी में रेंगता है और जोर–जोर से बहुत रोता है। उस समय गर्भ का उसका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह विपरीत गति को प्राप्त हो जाता है। फिर जब उसका पालन–पोषण होता है, तब भी उसे बहुत कष्ट होता है। छोटे बच्चे (शिशु) के कान में दर्द होता है, इसलिए वह रोता है लेकिन माँ समझती है कि भूखा है इसलिए रो रहा है, अतः उसे स्तन पान कराने लग जाती है। ऐसा करने से बच्चे का कान का दर्द तो ठीक होगा नहीं बल्कि उसे दस्त होने लगते हैं और माँ लाड़ में बच्चे को और अधिक दूध पिला देती है। इसलिए जो लोग उस बच्चे के अभिप्राय को नहीं जान पाते, ऐसे लोगों के द्वारा उसका पालन–पोषण होता है। शैशव, पौगंड अवस्था में भी बालक को बड़ा कष्ट मिलता है। थोड़े दिन की जो जवानी आती है, उसी में मनुष्य मस्त हो जाता है; जिससे बुढ़ापा भी कष्ट में बीतता है और शैशव तथा पौगंड अवस्थायें भी कष्ट से बीतती हैं। बीच की युवावस्था में मनुष्य को साधन करना चाहिए लेकिन इसी अवस्था में 'जीव' माया में बुरी तरह जकड़ जाता है। भगवान् कौन हैं, उनसे उसे कोई मतलब नहीं रहता, अपने जीवन को विषय–भोगों में नष्ट कर लेता है, मैं–मेरेपन का झूठा दुराग्रह करता है। उन्हीं लोगों को यह अपना मित्र बनाता है जिनके संग से यह भोग सीखता है और स्त्री–प्रसंग की चर्चा करता है कि अमुक पुरुष की स्त्री किसी दूसरे के पास गयी, अमुक स्त्री बड़ी सुन्दर है, बड़े अच्छे कपड़े पहनती है। स्त्री लम्पट लोगों के साथ यह बैठता है और स्त्री प्रसंग की ही बात करता है। इसका यह परिणाम होता है कि जिस गर्भ से बाहर निकला, अब उसी गर्भ में घुसने की फिर से तैयारी करता है। मल–मूत्र के गर्भ में लिपटा रहा, अब पुनः इसी मल–मूत्र में घुसना चाहता है। यह क्या है, यह माया है। इसलिए **'सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ।**(श्रीभागवतजी ३/३१/३४) ऐसे स्त्रीलम्पटों का संग नहीं करना चाहिये जो सदा स्त्रियों की ही बातें करते हैं। गृहस्थ पुरुष को भी स्त्रियों की चर्चा नहीं करनी चाहिए। विषयभोग तो तुम करते ही हो लेकिन उसकी बात करने से क्या लाभ ? भोग की क्रिया भी नहीं होती किन्तु मनुष्य भोग की बातों के द्वारा बन्धन में बँधता रहता है। ऐसे भोगी लोगों के पास नहीं बैठना चाहिए, न ही

उनकी बात सुननी चाहिए क्योंकि जीव को किसी और का संग करने से ऐसा मोह और बन्धन नहीं होता जैसा स्त्री और स्त्रियों के संगियों का संग करने से होता है। प्रजापति ब्रह्माजी की क्या हालत हो गयी थी ? एकबार अपनी पुत्री सरस्वती के रूप को देखकर ब्रह्माजी इस प्रकार काममोहित हुए कि उसके हिरनी बनकर भागने पर उसके पीछे हिरन बनकर निर्लज्जता पूर्वक दौड़ने लगे। भगवान् कहते हैं – मेरी स्त्री रूपिणी माया का बल तो देखो जो बड़े–बड़े चक्रवर्ती सम्राटों को अपने पैरों से कुचल देती है, यह नियम है। एक महात्मा ने कहा है कि पुरुष सोचता है कि स्त्री मेरे अधीन है, मैं स्त्री को भोगता हूँ। पुरुष तो एक क्षण को स्त्री को भोगता है किन्तु स्त्री चौबीस घंटे पुरुष की छाती पर चढ़ी रहती है। स्त्री सभी को पदाक्रान्त करती है। जो भी 'पुरुष' स्त्री को भोगने जाता है तो अपने चरणों से वह उसे पदाक्रान्त कर देती है। यह प्रकृति का नियम है। चाहे वह चक्रवर्ती राजा है, कितना भी ऊँचा है, स्त्री को भोगने जो भी जायेगा, उसके चरणों से आक्रांत होकर जायेगा; यह माया है। एक बात और है, पुरुष लोग बड़े प्रसन्न होते हैं कि हमने बहुत–सी स्त्रियों को भोगा। भगवान् कपिल बता रहे हैं कि स्त्री भोगने का परिणाम क्या होता है ? **स्त्रीत्वं स्त्री सङ्गतः प्राप्तो –** (श्रीभागवतजी ३/३१/४१) जो अधिक स्त्री–भोगी हैं, अगले जन्म में वे ही स्त्री बनते हैं। यह निश्चय समझ लो। आज जो 'पुरुष' स्त्री भोग कर रहे हैं, वे ही अधिक भोग के कारण अगले जन्म में स्त्री बनेंगे। स्त्री बनकर फिर किसी दूसरे पुरुष को अपना पति मानेंगे। इसमें एक बहुत बड़ा गूढ़ रहस्य है कि संसार में जितने भी शरीर हैं, वे सब प्रकृति हैं। जैसे आज कोई स्त्री है और उसका कोई पति है तो वह पति नहीं है। भगवान् कपिल कहते हैं – **"यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम्"** – (श्रीभागवतजी ३/३१/४१) मेरी माया है, वह प्रकृति है; उसको स्त्री ने अपना पति मान रखा है अर्थात् जो पति का शरीर है, वह माया है। इसका मतलब यह है कि वास्तव में श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और वे ही पति हैं। इसीलिए भागवत में पाँचवें और दशम स्कन्ध में यह प्रसंग आता है कि जो स्त्रियाँ श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानती हैं, उन्हीं को सच्चा ज्ञान है। वैदिक धर्म में इसीलिए स्त्रियों के लिए सती धर्म बनाया गया है कि तुम्हारा पति ही भगवान् है अतः ये सब धर्म अप्राकृत नहीं माने गये हैं। गोपीजन ने अपने पति क्यों छोड़ दिए ? इसलिए क्योंकि वैष्णवधर्म अप्राकृत भागवतधर्म है, उसके आगे बाकी सब धर्म त्याज्य हो जाते हैं। **'तज्यो कन्त ब्रज बनितनि, भये मुद मंगलकारी।'** भगवान् कपिल भागवत में यहाँ कहते हैं कि मेरी माया ही है जो पति के रूप में आचरण करती है किन्तु है वह माया, पति नहीं है, पति तो भगवान् हैं इसलिए यह निश्चित हो जाता है कि संसार में कोई पति नहीं है। पति तो केवल परमात्मा हैं। पति का जो शरीर है, वह पति नहीं है; वह भगवान् की माया है। स्वयं भगवान् कपिल ने कहा – **मन्मायामृषभायतीम्** – मेरी माया पति की तरह आचरण कर रही है जबकि वह पति है नहीं। आचार्य श्रीविजयध्वजतीर्थजी लिखते हैं –

शब्दादिष्वासक्तितः कारणात् स्त्रीत्वे प्रमदाभावं प्राप्तामृषभायतीं रतौ पुरुषीकरणं नामारोपितपुरुषधर्मः।
(श्रीमद्विजयध्वजतीर्थकृतपदरत्नावली)

चाहे कोई स्त्री है अथवा पुरुष, यह शरीर हम लोगों को क्यों मिला है ? शब्द आदि जो पाँच विषयों में आसक्ति है, इसीलिए यह शरीर मिला है। रति–प्रसंग में प्रकृति 'पुरुष' की तरह नाटक करती है। जैसे – स्त्री और उसका पति है, एक तो पुरुष की तरह आचरण कर रहा है, स्त्री का आचरण तो स्त्री की तरह है ही। जो शरीर पुरुष की तरह आचरण कर रहा है, वह नकली है, वह पुरुष नहीं है; वह है स्त्री किन्तु पुरुष की तरह नाटक कर रहा है। इसलिए परम पुरुष भगवान् ही पति हैं, यह स्वयं भगवान् कह रहे हैं **– मन्मायामृषभायतीम्** – इस श्लोक के प्रति भागवत के टीकाकार आचार्यों ने यह भाव लिखा है। जीव इस संसार में भोग भोगकर मरता है, फिर जन्म लेता है। **'पञ्चत्वमहं मानाद्' –** (श्रीभागवतजी ३/३१/४५) जीव जिस शरीर के प्रति अहं बुद्धि रखता है और मानता है कि यह मैं हूँ, यही जन्म है; भाव यह है कि मृत्यु आदि से भय नहीं करना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि यह मैं इसलिए बता रहा हूँ कि जीव गति को समझकर धैर्यपूर्वक निःसंग भाव से मनुष्य विचरण करे और माया विरचित इस संसार में अपने शरीर को प्रभु की धरोहर समझो। प्रभु की धरोहर समझकर तब इस संसार में आचरण करो तो माया से मुक्त हो जाओगे। (श्रीभागवतजी ३/३१/४७,४८)

आसक्ति ही बन्धन

बाबाश्री के श्रीमद्भगवद्गीता-सत्संग (२/२/२०१२) से संकलित

श्लोक –५५

..... (शेष व्याख्या) अर्जुन स्थितप्रज्ञ थे, इतना बड़ा भोग उनके सामने आया लेकिन उनके मन में इच्छा पैदा नहीं हुई। नपुंसक बनने की हानि सामने आई किन्तु उन्हें दुःख नहीं हुआ । कामना से ही क्रोध पैदा होता है । इसलिए इस श्लोक (२/५५) में भगवान् कहते हैं कि जिस समय मनुष्य मन में स्थित समस्त कामनाओं को छोड़ देता है, उस समय वह आत्मतुष्टि प्राप्त कर लेता है। आत्मतुष्टि क्या है – सन्तोष । 'बिनु सन्तोष न काम नसाहीं ।' सन्तोष आ गया तो कामना कभी नहीं आएगी । जीभ में लड्डू खाने की इच्छा होती है असंतोष के कारण । किसी भी इन्द्रिय में भोग की इच्छा उत्पन्न होती है असंतोष के कारण। गीता, भागवत, रामायण आदि सब शास्त्र एक ही हैं, सबमें एक ही बात कही गई है कि बिना सन्तोष के काम नष्ट नहीं होता है। काम के रहते कभी भी आत्मसुख (सच्चा सुख) नहीं मिल सकता है और भगवान् के भजन से कामना मिटती है। **'राम भजन बिनु मिटहि कि कामा'** एक-दूसरे का सम्बन्ध है। सच्चा भजन जो करता है, उसका काम मिट जाता है। **'थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ।' 'बिनु बिग्यान कि समता आवइ'** समत्व बुद्धि बिना विज्ञान के नहीं होती। **'कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ'** जैसे आकाश में अवकाश होता है, उसी तरह विज्ञान में समता आती है। **'श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई।'** श्रद्धा के बिना धर्म नहीं होता, जैसे पृथ्वी के बिना गंध का अस्तित्व नहीं है।

'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥' बिना तपस्या के तेज नहीं होता। बिना जल के रस नहीं होता।

'सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं ॥' बिना महापुरुषों की सेवा के शील गुण नहीं आता, जैसे बिना तेज के रूप नहीं होता है। **'निज सुख बिनु मन होई कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा ॥ कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरिभजन न भव भय नासा ॥** बिना विश्वास के कोई सिद्धि नहीं होती। ये बहुत बढ़िया चौपाइयाँ हैं – **बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न रामु। राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्रामु ॥**

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड –९०)

ये अमोघ चीजें हैं। कामना है तो आत्मसुख कभी नहीं मिलेगा। कामना मोड़ देगी। भगवान् ने भी गीता में कहा है – **यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥**

(श्रीगीताजी ४/१९)

पंडित कौन है ? पढ़ने वाला नहीं है, पंडित वह है जो काम-संकल्प से रहित है, उसमें ज्ञानाग्नि धक्-धक् जलती रहती है और यह ज्ञानाग्नि उसके सब कर्मों को जलाती रहती है अर्थात् ज्ञानाग्नि तब जलती है जब मनुष्य के अन्दर कामना नहीं होती अन्यथा कामाग्नि ज्ञानाग्नि को जला देती है – **धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥**

(श्रीगीताजी ३/३८)

धुआँ जिस प्रकार आग को ढक देता है, उसी प्रकार काम भी ज्ञान को ढक देता है। जिसके अन्दर ज्ञानाग्नि जलती रहती है उसके सब कर्म अपने आप जल जाते हैं, उसको कर्म बाँध नहीं सकता। पढ़ने वाला पंडित नहीं होता। जिसके अन्दर ज्ञानाग्नि जल रही है और उसके सब कर्मों को जला रही है, सच्चा पंडित वही है। इसी तरह –

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥

(श्रीगीताजी ४/२०)

जिसके अन्दर फलासक्ति नहीं है, वह नित्यतृप्त है। **"बिनु संतोष न काम नसाहीं"** यह चौपाई इसी का अनुवाद है। कर्मासक्ति और फलासक्ति – इनको जिसने छोड़ दिया, वह नित्यतृप्त है अर्थात् उसको कभी कोई इच्छा नहीं होगी क्योंकि वह नित्यतृप्त है। तृप्ति में इच्छा नहीं

होती जैसे किसी ने बहुत खा लिया हो और उसे कुछ खाने को और दिया जाए तो कहेगा कि नहीं, अब और नहीं खा सकता, वमन (उल्टी) हो जाएगी। बहुत ज्यादा पेट भर गया है। इसी तरह से तृप्ति में इच्छा नहीं होती है। नित्यतृप्त ही भगवान् का आश्रित होता है। 'निराश्रय' माने संसार का आश्रय हट जाता है। जो नित्यतृप्त है, वही निराश्रय है, संसार का आश्रय नहीं लेगा। अगर वह संसारी कर्म करता भी है तो भी वह कुछ नहीं कर रहा है क्योंकि उसके अन्दर भूख और आसक्ति नहीं हैं। जहाँ तक खाने–पीने का सम्बन्ध है तो सभी लोग महाभारतकाल में खाते थे और भीष्मपितामह भी खाते थे लेकिन उनका खाना अलग होता था। एक आसक्ति के सहित खाना होता है और एक आसक्ति रहित खाना है, दोनों में अंतर है। भीष्मपितामह की क्रियाएँ आसक्ति रहित होती थीं। आसक्ति ही पाप है और कोई पाप नहीं है। जैसे कमल के पत्ते को पानी में रख दो तो वह पानी उससे चिपकेगा नहीं, उस पत्ते पर पानी की बूँद भी डालो तो लुढ़क जाएगी; इसी प्रकार जो आसक्ति रहित संत होते हैं, वे कर्म करते हुए भी नहीं कर रहे हैं, कर्म में लग रहे हैं किन्तु वास्तव में वे कुछ नहीं कर रहे हैं क्योंकि उनकी आसक्ति नहीं है। आसक्ति ही पाप है, कर्म पाप नहीं है। मनुष्य को आसक्ति छोड़ देना चाहिए। आसक्ति छोड़ने से नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त हो जाती है –

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति ॥

(श्रीगीताजी १८/४९)

कर्म कर रहे हैं लेकिन बंधन नहीं हो रहा है, वह नैष्कर्म्य है। बंधन क्यों नहीं है क्योंकि उसकी आसक्ति नहीं है। वह लड्डू खा रहा है लेकिन लड्डू में उसकी आसक्ति नहीं है। लड्डू छिन जाए तो वह रोयेगा नहीं, दुःखी नहीं होगा; आसक्ति वाला रोता है। जिसकी आसक्ति नहीं, वह जितात्मा है, उसके अन्दर स्पृहा नहीं आयेगी। बस, इतने से ही नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त हो जाती है। स्पृहा तभी आती है जब आसक्ति होती है, इसीलिये जो भगवान् ने कर्मज फल छोड़ने की बात कही, यह सच्चा साधन है।

'कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।' मनीषी वही है जो हर समय कर्मज फल को छोड़ता है, न उसे सुख होता है, न दुःख होता है। कोई चीज चली गयी तो चली जाए, आ गयी तो आ जाए क्योंकि उसकी आसक्ति नहीं है, वह कर्मज फल को ग्रहण नहीं कर रहा है, वही मनीषी है, वही जन्म–बन्ध से छूटकर भगवान् के पास जायेगा – **'जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।'** जो बुद्धि मोहकलिल को पार कर जाएगी, उसको निर्वेद होता है। बुद्धि चंचल क्यों होती है, कामना के कारण होती है। स्थिर कैसे होगी, जब कामनाओं को छोड़ देगी। स्थितप्रज्ञ का लक्ष्य क्या है, कामनाओं को छोड़ना। स्थितप्रज्ञ कैसे उठता है, कैसे व्यवहार करता है, कैसे बैठता है, कैसे चलता है, तो इसका उत्तर है कि उसकी सारी क्रियाएँ कामना रहित होती हैं। बस, इतने से ही वह स्थितप्रज्ञ बन गया।

स्थितप्रज्ञ का लक्षण क्या है ? यह प्रश्न अर्जुन ने पूछा, क्यों पूछा क्योंकि बिना स्थितप्रज्ञ हुए योग की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब भगवान् ने अर्जुन को बताया कि वेद पढ़ने से भी बुद्धि चंचल हो जाती है – **श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला । समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥** (श्रीगीताजी २/५३)

तुम्हारी बुद्धि जब निश्चल हो जाएगी, तब तुमको योग की प्राप्ति होगी, उसके पहले योग की प्राप्ति नहीं होगी; ऐसा भगवान् ने कहा है। चंचल मन वाला न 'भक्तियोग, न कर्मयोग, न सांख्ययोग' – किसी भी योग को प्राप्त नहीं कर सकता। इस बात पर अर्जुन ने पूछा कि जब प्रज्ञा स्थित होगी तब योग मिलेगा तो बुद्धि स्थिर कैसे हो ? अनादिकाल से बुद्धि चंचल है। बचपन से हर बच्चा चंचलता का अभ्यास करता है, बचपन में चंचलता करता है क्योंकि बुद्धि स्थिर नहीं है। जवानी में चंचलता करता है क्योंकि कामवासना आ जाती है, उससे चंचलता आती है, फिर आगे जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है तो क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार बुद्धि को चंचल बनाते हैं क्योंकि इन्द्रियाँ चंचल बनती हैं तो वे मन को चंचल बनाती हैं। जब तक चित्त में राग, भय व क्रोध हैं तो बुद्धि चंचल हो जाएगी। बुद्धि चंचल कैसे होती है ? राग, भय व क्रोध के कारण बुद्धि चंचल होती है; जब ये विकार समाप्त होंगे तभी हम स्थितप्रज्ञ बनेंगे। सबसे

बड़ा चंचलता का कारण होता है राग। तीसरे अध्याय में अर्जुन ने प्रश्न किया कि मनुष्य पाप क्यों करता है ?

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥
(श्रीगीताजी ३/३६)

नहीं चाहते हुए भी वह पाप करता है क्योंकि गलत काम करने से समाज में प्रतिष्ठा नष्ट होती है, समाज में हो सकता है प्रतिष्ठा न भी नष्ट हो, हमने चोरी से गलत काम कर लिया लेकिन इससे परमार्थ नष्ट होता है।

सूरदास जी ने कहा है – "**तुम प्रभु मोसो बहुत करी**। " हे प्रभु ! तुमने हमारे साथ बहुत भलाई की।

"**नर देही दीन्ही सुमिरन को**" आपने मनुष्य बना दिया मुझे लेकिन "**मो पापी सों कछू न सरी। "**

"जग में जनम पाप बहु कीन्हे, आदि अंत लौं सब बिगरी ॥ " इन पदों का गीता के ज्ञान से सम्बन्ध है, भगवान् के ज्ञान से इनका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इन पदों को समझना चाहिए। बड़े–बड़े महापुरुष हुए, उन्होंने अनुभव किया, समझा। वह कहते हैं कि संसार में जन्म लेकर हमने बहुत पाप किया, पाप क्या किया ? भगवान् की ओर नहीं आये। हे प्रभु ! तुमने मनुष्य शरीर दिया था सुमिरन करने के लिए, भजन करने के लिए लेकिन मैंने सुमिरन नहीं किया, सुमिरन किया संसार का। संसार का सुमिरन क्यों किया ? यही प्रश्न अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि मनुष्य पाप क्यों करता है तो भगवान् ने (३/३७ गीता) में कहा कि ऐसा काम और क्रोध के कारण होता है। ये बहुत खाते हैं, ये महापापी हैं।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥
(श्रीगीताजी ३/३७)

इनका पेट नहीं भरता, क्यों ? कामवासना है तो एक बार, दो बार भोग लिया लेकिन यह बढ़ती जाती है क्योंकि काम एक अग्नि है और अग्नि का नाम है अनल। अनल माने **न अलं,** अग्नि कभी मना नहीं करती, जो कुछ उसमे डालते जाओगे वह खाती जायेगी, इस तरह से आग बढ़ती जाती है, इसलिए उसको अनल कहते हैं।

नास्ति अलं यस्मिन – जो 'बस' करना नहीं जानती है। इसीलिए काम को अनल कहा गया है।

गीता ३/३९ में भगवान् ने काम को दुष्पूर अनल कहा है। इसका कभी पेट नहीं भरेगा। भोग भोगते–भोगते मनुष्य मर जाता है। वृद्धावस्था में मनुष्य का कभी पेट नहीं भरता। ३/३९ में भगवान् ने बताया कि काम क्या है ? **दुष्पूरेणानलेन च –** यह दुष्पूर अनल है, कभी भी इसका पेट नहीं भरेगा क्योंकि इसका नाम रखा गया है महाशन, यह बहुत खाता है। कितना भी खाते चले जाओ, कितना भी भोग भोगते जाओ। जो महाशन होता है, वह महापापी होता है। जो जितना भोग भोगता है, वह उतना बड़ा पापी बनता है। काम बुद्धि को चंचल करता है। इसलिए भगवान् ने कहा कि ये तीन शत्रु हैं।

'वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते' (गीता २/५६)

राग, भय और क्रोध जब चले जायेंगे तब हम स्थितप्रज्ञ बनेंगे, नहीं तो चंचल बने रहेंगे।

एकबार स्वामी विवेकानंद के गुरु संत रामकृष्ण परमहंस का सत्संग चल रहा था। उनके सत्संग में बहुत से लोग आते थे। बूढ़े–जवान, स्त्री–पुरुष सभी आते थे। युवा लड़के–लड़कियां अधिक आते थे। लड़कियां अधिक चतुर होती हैं। उनकी ओर कोई आसक्ति के साथ देखता है तो वे पहचान जाती हैं कि यह आसक्ति के साथ हमें देख रहा है। जब रामकृष्ण परमहंस जी का सत्संग हो रहा था तो एक बूढ़ा व्यक्ति आया और सबकी दृष्टि बचाकर बार–बार लड़कियों की तरफ देखा करता था। जब सत्संग समाप्त हुआ तो लड़कियों ने परमहंस जी से पूछा कि युवा लड़के तो हमें नहीं देखते थे किन्तु यह वृद्ध व्यक्ति हमें बार–बार क्यों देखता था तो परमहंस जी ने उत्तर दिया कि एक बार कोई कृषक दो बैलों को लेकर खेती कर रहा था, इतने में वहां से एक गाय गुजरी तो एक बैल तो शांत रहा लेकिन दूसरा बैल गाय की ओर भागने की कोशिश करने लगा, यह देखकर किसी व्यक्ति ने किसान से पूछा कि एक बैल तो शांत है किन्तु दूसरा

उछल–कूद क्यों कर रहा है तो किसान ने कहा कि यह भोगी है, इसे पहले भोग का अनुभव हो चुका है। इसके अन्दर भोग के संस्कार हैं जबकि दूसरे बैल के अन्दर भोग के संस्कार नहीं हैं। परमहंसजी ने लड़कियों से कहा कि इसी प्रकार इन युवकों ने भोग का अनुभव नहीं किया है और सत्संग के प्रभाव से इनके यत्किंचित भोग के संस्कार भी नष्ट हो चुके हैं इसीलिए ये तुम्हे नहीं देख रहे थे परन्तु वह वृद्ध व्यक्ति भोग के अनुभव से गुजर चुका है, अभी उसके भोग के संस्कार नष्ट नहीं हुए हैं इसीलिए वह बारम्बार तुम लोगों की ओर देख रहा था।

संस्कार बड़े ही प्रबल होते हैं। संस्कार नष्ट नहीं होते हैं। संस्कारों का नाश ज्ञान से नहीं होता है। संस्कारों का नाश संस्कारों से होता है। संस्कार ऐसी चीज है, जिसको बीमारी नष्ट नहीं कर सकती, मौत भी इसे नष्ट नहीं कर सकती है। मनुष्य मर जाता है, मरने के बाद शिशु के रूप में उसका पुनर्जन्म होता है, जब वह माँ का दूध पीता है तो दूसरा स्तन पकड़े रहता है क्योंकि संग्रह की आदत उसके मन में बनी रहती है। दूसरा बच्चा माँ की गोद में बैठ जाए तो वह चिढ़ता है, लात मारता है। राग–द्वेष के संस्कार नष्ट नहीं होते हैं। संस्कारों को मृत्यु भी नष्ट नहीं कर सकती, संस्कार इतने बली होते हैं। उपनिषद में कहा गया है कि जब हृदय की गाँठ टूट जायेगी तब सभी संशय नष्ट होंगे और तब तुम्हारे सब संस्कार और कर्म नष्ट हो जायेंगे, उस सत्य को देखने, उसके अनुभव करने के बाद। याद रखो, संस्कारों का नाश नहीं होता। संस्कारों का नाश हो जाएगा तो हम मुक्त हो जायेंगे। संस्कारों का नाश नहीं होता है, चाहे कितना ही पढ़, लिख लो।

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रह: किं करिष्यति –

(गीता–३/३३)

भगवान् ने कहा कि निग्रह काम नहीं देगा, साधु बन गये, उससे कुछ नहीं होगा। संयम कुछ काम नहीं देगा क्योंकि मनुष्य अपने स्वभाव से बंधा हुआ है। हर व्यक्ति अपने स्वभाव के आधीन है। इस बात को भगवान् ने कई बार कहा है जैसे कि गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान् ने कहा कि हर मनुष्य अपने स्वभावज कर्म में बंधा हुआ है।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥

(श्रीगीताजी १८/६०)

न चाहते हुए भी तुमको कर्म करना पड़ेगा। यदि तुम्हारे अन्दर काम का स्वभाव, काम का संस्कार है तो तुमको भोग भोगना पड़ेगा चाहे साधु बन जाओ, चाहे कुछ भी बन जाओ। तुम्हारे अन्दर यदि संग्रह का संस्कार है तो तुमको संग्रह करना पड़ेगा चाहे तुम साधु बन जाओ अथवा विरक्त बन जाओ। तुम नहीं करना चाहते हो तब भी तुमको अपने स्वभाव के अनुसार कर्म करना पड़ेगा। इसलिए संस्कारों का नाश नहीं होता। हम लोगों के अन्दर जो संस्कार हैं राग के, भय के तथा क्रोध के, वे अनादि काल से चले आ रहे हैं, वे जब तक हैं, बुद्धि को चंचल बनाते हैं, इसलिए भगवान् ने कहा– **वीतरागभयक्रोधः**। राग,भय व क्रोध – ये तीन विकार प्रमुख हैं। **त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन :।**
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

(गीता १६/२१)

काम, क्रोध तथा लोभ – ये तीनों नरक के द्वार हैं, जो जीव को नरक में ले जाते हैं। अतः इन तीनों का त्याग कर दो।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

(श्रीगीताजी १६/२२)

इसके पश्चात् जब तुम अपने कल्याण के लिए भजन करोगे तो निश्चित सिद्ध हो जाओगे।

गह्वर वन,बरसाना श्रेजी की नित्य लीला भूमि है, यहाँ नित्य ही राधारानी की लीला होती रहती हैं और अधिकारीगणों को उसका दर्शन भी प्राप्त हो जाता है । जिन पर श्रीजी की कृपा होती है, उन्हीं को यहाँ नित्य लीला का दर्शन होता है ।

नित्यकेलि विलासमयी 'श्रीगह्वरवाटिका'

मयूरकुटी और मानमन्दिर के बीच का भाग गह्वरवन है, जो युगल सरकार का नित्य विहार स्थल है ।

गह्वरवन प्रार्थना मन्त्र –

गहवराख्याय रम्याय कृष्णलीलाविधायिने ।
गोपीरमण सौख्याय वनाय च नमो नमः ॥

(वृहन्नारदीये)

"सुरम्य गह्वरवन", श्रीकृष्ण का लीला स्थान, गोपियों के सहित रमण करने वाले श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिये ही जो विराजमान है, आपको प्रणाम है।

यत्र गह्वरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलि विलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

(वृषभानुपुरशतक –७)

"जिस बरसाने में गह्वरवन है, जिसे श्रीराधा ने स्वयं अपने नित्य केलि–विलासों से बनाया है।" इसीलिए यह स्थल नित्य विहार का माना गया है। 'नित्य विहार' का तात्पर्य – "जहाँ एक क्षण के लिए भी वियोग नहीं है।" स्वकीया एवं परकीया दोनों से यह भिन्न उपासना पद्धति है। स्वकीया में पितृगृहगमन से वियोग का अनुभव होता है और परकीया में तो संयोग का अवसर भी कम ही मिलता है और वह भी अनेक बाधाओं के बाद। वहाँ बाधाओं को प्रेम की कसौटी या प्रेम की तीव्रता का मापदण्ड माना जाता है। स्वकीया वाले श्रीराधा के मायिक व कल्पित पति के नाम से ही अरुचि रखते हैं। वे परकीयत्व का किंचित् मात्र संस्कार भी अपनी अनन्यता में स्वीकार नहीं करते, इसीलिए श्रीगह्वरवन में रसिकों ने वियोग शून्य नित्य मिलन की उपासना स्वानुभव से लिखी है। जिनमें युगल इतने सुकुमार हैं कि एक क्षण का भी वियोग असह्य है किन्तु वियोग के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता है। यह भी एक सत्य है। इसलिए यहाँ अति सूक्ष्म विरह भी गाया गया है। वह विरह, मिलन की अवस्था में भी निरन्तर पिपासा बढ़ाता रहता है। यही प्रेम वैचित्री है। **योगे वियुक्तवन्मानि ललितैकाश्रयं स्वयम् । करुणाशक्तिसम्पूर्णं गौरं नीलं च गह्वरे ॥**

(वृषभानुपुरशतक)

वियोज्यते वियुक्तं वा न कदापि वियोक्ष्यते ।
क्षणार्द्धसत्कोटियुगं युगलं तत्र गहवरे ॥

(वृषभानुपुरशतक)

अर्थात् – "जिस गह्वरवन में, कोटि–कोटि युग भी, आधे क्षण के समान, नित्य संयोग में, प्रेम पिपासा में व्यतीत हो जाते हैं। जैसे – श्रीराधासुधानिधि, जो श्रीराधा की अनेक लीलाओं का सागर है, जिसमें उनकी विविध छवियाँ स्वकीया–परकीया की प्रस्तुत की गयी हैं। यद्यपि साम्प्रदायिक आग्रह से सम्पूर्ण ग्रन्थ "श्रीराधासुधानिधि" को अपनी पद्धति में सीमित करने का प्रयास किया गया है किन्तु संतजन सभी पद्धतियों का सम्मान करके अपने आस्वादन में लग जाते हैं। खण्डन का बात–बतंगड़, शुद्ध नीरस कलुषित लोग ही किया करते हैं।

वहाँ पर भी गह्वर वन की मिलन पद्धति की छवि का वर्णन आता है **(रा.सु.नि.–२५३)** अर्थात् – वियोग तो दूर रहा, वियोगाभास से ही कोटि–कोटि प्रलयाग्नि की ज्वाला, युगल को बाहर व भीतर अनुभव होने लग जाती है। ऐसा गाढ़ प्रेम है। जहाँ अति सूक्ष्म विरह की कल्पना भी इतनी तीव्रतम पिपासा जगाती रहती है। इसीलिए अंक में स्थित, मिलित अवस्था में विरहानुभूति होने लग जाती है **(रा.सु.नि.–१४६, १२६)**। इसलिए वृन्दारण्य से तात्पर्य, पंच योजनात्मक वृंदावन से है, जिसमें श्री गह्वर वन भी आता है, इस विषय को वृंदावन में संक्षेप में कहा जायेगा। दोनों पक्ष के टीकाकारों ने **(रा.सु.नि.–७८)** ईशता, ईशानि, शचि आदि की व्याख्या में लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी आदि को ग्रहण किया है, कहीं इन सबको 'श्रीजी' का अंश, और कहीं इनसे स्वतंत्र स्वामिनी के रूप में अर्थ किया है। इस प्रकार श्री राधिका से ये सब सम्बद्धा होती हैं। चाहे अंश रूप से या आधीन रूप से, अंश–अंशिनी में कोई भेद नहीं है। जब हम इनको राधिकांश रूप में मान्यता

देते हैं तो फिर राधा लीला में उनके विभिन्न स्वरूपों से ही द्वेष क्यों है? जबकि श्रीमद्भागवत में डंके की चोट पर कहा गया है। **सर्वाः शरत् काव्यकथारसाश्रयाः (भा.१०/३३/२६)** अर्थात् "युगल सरकार ने सभी रसों का आस्वादन किया। वहाँ स्वकीया (अपनी विवाहिता) या परकीया (दूसरे की विवाहिता) या नित्यदाम्पत्य (नित्यवधू) रस हो।"

बरसाने के वन–उपवन के सरोवरों में निशंक भाव से 'श्रीजी' क्रीड़ा करती हैं। वन के भीतर श्रीराधा सरोवर, उनकी 'बाल व श्रृंगार लीला' का एक स्थल है –

श्रीराधासर–स्नानाचमन मन्त्र –

देवकृतार्थरूपायै श्री राधा सरसे नमः।
त्रैलोक्य पद मोक्षाय रम्य तीर्थाय ते नमः॥

(ब्रजभक्तिविलास)

जिस सरोवर पर यात्रा संकल्प लेती है, उसका नाम 'राधा सरोवर' या 'राधासर' है। यहाँ श्रीराधा रानी अपनी सखियों के साथ जल क्रीड़ा करती थीं, जिससे इसका नाम 'राधा सरोवर' हो गया। इस सरोवर के प्रार्थना मन्त्र का भाव है कि "बड़े–बड़े देवता भी राधासरोवर आने पर कृतार्थ हो जाते हैं। यह त्रिलोकी को भी मुक्त करने की शक्ति रखता है। ऐसे रमणीय तीर्थ को हम नमस्कार करते हैं।"

रासमण्डल प्रार्थना मन्त्र

विलास रास क्रीडाय कृष्णाय रमणाय च।
दशवर्ष स्वरूपाय नमो भानुपुरे हरे॥

(ब्रजभक्तिविलास)

अर्थात् – "रास विलास क्रीड़ा के लिये दस वर्षीय, वृषभानु पुर में विराजमान 'श्रीकृष्ण' को प्रणाम है।"

बाल व श्रृंगार लीलाएँ –

श्रीराधा अति मिठ बोलनी, पुर उपबन बन खेलन डोलनि।
कबहूँ सखिन संग लै भीर खेलन जांइ सरोवर तीर॥
अति सुन्दर जु मृत्तिका लाइ सुहथ खिलौना रचती बनाइ।
सदन बनावैं न्यारे न्यारे, तिन में धरैं खिलौना प्यारे॥
ग्रह के सब कारज करैं खेल मगन कौतिक विस्तरैं।
सब कौं सब जु बांइनौं देंहिं सब पै तें सब सादर लेंहि॥
टोलनि टोलनि मंगल गावैं कुंवरिहिं नाना खेल खिलावैं।
कबहूं झूलहिं गहि- गहि तरवर कबहूँ केलि करैं जल सरवर॥
कबहूं लै जु मीन गति तरैं जल में महा कुलाहल करैं।
कबहूं जल मुख पर लै सीचैं कबहूं पाछें रहि दृग मीचैं॥
कबहूँ तोरि जु कमल बगेलैं तकि तकि तन मारैं यौं खेलैं।
बुडकी लैं जल हीं जलधावैं भरैं चुहुंटियां अंक लगावैं॥
पुनि जल पैठैं उछरैं ऐसें मीन करत कौतूहल जैसें।
तन अंगोछि पहिरैं जु निचोल मिलैं जु अपने अपने टोल॥

(ब्रजप्रेमानन्दसागर.नवम लहरी)

अथवा –

कबहूं राधा चम्पक बरनी।
गह्वर झूलैं कौतिक करनी॥

(ब्रजप्रेमानन्दसागर . दशम लहरी, चौपाई – ७२)

श्रीगह्वरवन की लीलाओं का गान सभी रसिकों ने किया है। जैसे – **'प्यारी जु आगैं चलि आगे चलि गह्वर वन भीतर'** (केलिमाल ४६)

देखि सखी राधा पिय केलि।
ये दोउ खोरि खिरक गिरि गह्वर
विहरत कुंवर कंठ भुज मेलि॥

(हित चतुरासी – ४९)

भूलि परी गह्वर वन में जहाँ सखी न कोउ साथ। सोहिलो सुख गहर गह्वर भरयौ भाव अनन्त।

(महावाणी सहेली, उत्साह सुख ४१/६४ तथा सोहिलो ३९में)

सदा वृंदावन सबकी आदि।
गिरि गह्वर वीथी रत रन में कालिन्दी सलिलादि॥

(व्या.वाणी.वृं.म.पद सं.४२)

एक दिन राधिकारानी गह्वरवन में खेल रहीं थीं और श्रीकृष्ण उनको ढूँढ़ते–ढूँढ़ते नन्दगाँव से चले।

जब यहाँ पहुँचते हैं तो ललिता जी कहती हैं "हे नन्द लाल ! तुम यहाँ कैसे आये? "

श्याम सुन्दर कहते हैं – "ललिता जी ! हम श्रीराधा रानी के दर्शन के लिये आये हैं।" ललिता जी कहती हैं –"अभी तुमको दर्शन तो नहीं मिलेंगे क्योंकि किशोरी जी अभी महल से चली नहीं हैं।" जबकि वो चल चुकी थीं। ये हैं लाड़ली जी की सखियाँ, ये टेढ़े ठाकुर से टेढ़ेपन से ही बात किया करती हैं। रसिकों ने ऐसा लिखा है – **हम हैं राधे जू के बल अभिमानी।**
टेड़े रहें मोहन रसिया सौं बोलत अटपट बानी॥

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

ललिताजी बोलीं कि किशोरीजी तो अभी नहीं आ रही हैं, तब श्यामसुन्दर कहते हैं – "तुम लोगों ने हमारा नाम

चोर रखा है, चोर से चोरी नहीं चलती और ललिता जी तुम समझ रही हो कि हम तुम्हारी चोरी समझ नहीं रहे।" ललिताजी पूछती हैं – "हमारी चोरी क्या है? "

श्रीकृष्ण बोले – **"देख सखी, राधा जू ! आवत ! "**

श्रीकृष्ण बोले –"अरे, लाड़ली जी तो आ रही हैं ! "

ललिताजी बोलीं – "कैसे पता? "

कृष्ण बोले – "किशोरी जी जब आती हैं तब उनके शरीर की महक चारों ओर फैल जाती है। यह सुगन्ध बता देती है कि वह आ रही हैं। तुम नहीं छिपा सकती हो 'राधिका रानी' को। अरे ! चाँद को कोई क्या हाथ से ढक सकता है? हम तुम्हारी चोरी जानते हैं।" वहाँ कहा गया है कि श्रीजी खेलती आ रही हैं अपनी सखियों के साथ। ये गह्वर वन की वही कुंजें हैं, वही लताएँ हैं, वही स्वरूप है। गह्वर वन में राधा रानी जब कुंजों से होती हुई आ रही हैं तो उनके आँचल को हवा छूती हुई श्रीजी के अंग की सुगन्ध को लेकर के श्रीकृष्ण जहाँ हैं, वहाँ पहुँचती है। श्रीजी के अंग की सुगन्ध पाकर श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं। किशोरी जी के अंग की सुगन्ध पाकर ही श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं? "धन्य ही नहीं, धन्य–धन्य हो जाते हैं। धन्य–धन्य ही नहीं, अति धन्य हो जाते हैं श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण अति से भी अधिक धन्य, यानि कृतार्थ धन्य हो जाते हैं।" (रा.सु.नि.१) तात्पर्य कि "सब कुछ मिल गया, पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी। जो पूर्ण ब्रह्म है, वह बरसाने में जाकर ही पूर्ण होता है।" यह गह्वरवन बहुत ही महत्वपूर्ण वन है क्योंकि ऐसा सौभाग्य किसी अन्य ब्रज के वन को नहीं मिला, जो गह्वर वन को मिला, इस वन को राधा रानी ने अपने हाथों से सजाया है और इसमें दोनों 'राधा–कृष्ण' नित्य लीला करते हैं। श्री गहवर वन में ही "श्रीवल्लभाचार्य जी" की बैठक एवं शंख शिला स्थल है। यहाँ ग्वालबालों ने गोपालजी से शंख देखने की इच्छा प्रकट की, गोपाल जी ने शंख दिखाया और बजाकर इस शिला पर रख दिया, जिससे यह शिला ही शंखाकार हो गयी एवं माखन खाकर यहाँ हाथ पौंछे थे, जिससे यह शिला चिकनी हो गयी। 'आचार्यचरण श्रीमद् वल्लभाचार्य जी' की १०८ बैठक जी में से एक बैठक गहवर वन में है, जहाँ आपने १०८ भागवत पाठ किये।

जिस समय आप गहवर वन में पधारे तो बड़ा विचित्र दृश्य देखा। एक अजगर, जिसे लाखों चीटियाँ खा रही है, शिष्यों द्वारा पूछने पर कि यह कौन है? किस कारण से इस दुर्गति को प्राप्त है। आचार्य चरण ने बताया कि जो धर्मानुयायी संत महन्त दैवी द्रव्य का दुरूपयोग करते हैं, अपनी वासनाओं की पूर्ति में उसे लगाते हैं, उनकी यही दुर्गति होती है। **"हरहि शिष्य धन शोक न हरही, ते गुरु घोर नरक में परही"।** यह अजगर भी एक महन्त थे, जिन्होंने भगवत्सेवा के धन को अपनी वासनाओं में व्यय किया, उसीसे इनकी यह स्थिति हुई है और चींटियाँ जो इनको खा रही हैं ये इनके शिष्य थे। सभी को इस विषय में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। परद्रव्य हरण, परद्रव्य पर दृष्टि, ये सब जघन्य पाप हैं। मानसकार गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के जीवन में भी एक बड़ी रहस्यमयी घटना मिलती है। एक समय आप कामदगिरि की परिक्रमा करके, लक्ष्मण पहाड़ी पर जा रहे थे, तभी अचानक आपको एक श्वेत वर्ण सर्प दिखाई पड़ा **"संत दरस ते पातक टरई"** आपकी अपनी बात चरितार्थ हुई, आपकी दृष्टि पड़ते ही उसके सब मलिन कर्म नष्ट हो गये और अत्यन्त दीन हो उसने आपसे प्रार्थना की – "हे महामुने ! आप अपने पवित्र कर से मेरा स्पर्श कर, मुझे पावन बनाएँ।" ज्यों ही कर स्पर्श प्राप्त हुआ कि वहाँ सर्प के स्थान पर एक महात्मा दिखाई पड़े। गुसाँई जी ने पूछा – "महाराज आपका नाम?" (हाथ जोड़े हुए) महात्मा – "योगश्रीमुनी, मुझे कहते थे।" गुसाँई जी – "तो, आप सर्प योनि में कैसे ?" महात्मा – "संत–भगवान् की सेवा के लिए आई सम्पत्ति का मैंने दुरूपयोग किया, बस, उसी के फलस्वरूप निकृष्ट योनिको प्राप्त हो गया।" द्रव्य का समुचित उपयोग न करना ही नरक प्रवेश है – **"परधन नव झाले हाथ रे"**

(नरसी जी)

अतः बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।

*श्यामसुन्दर की वंशी ध्वनि के प्रभाव से जैसे पाषाण पिघल गये, यमुना जी रुक गयीं, इस प्रकार का श्रीजी में कौन–सा प्रभाव है तो गोपियाँ श्यामसुन्दर से कहती हैं कि तुम सैकड़ों वंशी ध्वनि भी एक साथ करो तो वह राधारानी के एक भी नूपुर की ध्वनि की बराबरी नहीं कर सकती है। अतः जब श्रीजी की नूपुर ध्वनि होती है तो उस समय भी प्रकृति में, सृष्टि में विरोधाभास होने लग जाता है । तरल जड़ हो जाता है, जड़ तरल हो जाता है । गोपियाँ नृत्य करना भूल जाती हैं, श्यामसुन्दर वंशी बजाना भूल जाते हैं । **तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो ।***

श्रीराधारसमय 'मानभवन'

बैठक जी से पश्चिम ऊपर चोटी पर मानगढ़ है। मानगढ़ में रूठी हुई राधा रानी को श्याम सुन्दर ने मनाया था। जिससे इस स्थली का नाम 'मानगढ़' पड़ा। 'मान' माने रूठना। श्रीकृष्ण ने मनाने के बहुत से उपाय किये। कभी उनके चरणों में मस्तक रखते हैं, कभी उनको पंखा करते हैं, कभी दर्पण दिखाते हैं और कभी विनती करते हैं, पर जब राधा रानी नहीं मानती हैं, तब श्याम सुन्दर सखियों का सहारा लेते हैं। ये मान किसी लड़ाई या क्रोध से नहीं होता है, ये मान एक प्रेम की लीला है।

राधारानी श्यामसुन्दर के सुख हेतु मान करती हैं। मानमन्दिर में 'श्रीमानबिहारीलालजी' के दर्शन हैं।

मानमन्दिर प्रार्थना मन्त्र –

देवगन्धर्व रम्याय राधामान विधायिने।
मान मन्दिर संज्ञाय नमस्ते रत्नभूमये॥

(ब्रजभक्तिविलास)

अर्थात् – "देव–गन्धर्वों से रमणीक, इस दिव्य रत्नमय धरा पर मानिनी ने मान किया, अतः यह स्थान "श्रीमानमंदिर" नाम से प्रख्यात हुआ, इसे प्रणाम है।

नित्य विहार में "संभ्रममान" रसिकों ने माना है, जो दीर्घ मान नहीं होता है –

मानगढ़ चढत सखी कत आजु। 'व्यास' बचन सुनि कुँवरि निवाज्यो श्याम लयौ सिर ताजु॥

(व्यासवाणी .पद.१६४)

श्री प्रिया जी, श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर मान करती हैं क्योंकि वही मान का कारण है किन्तु कृपामयी का मान क्षणिक था।

'पिय के हिय तैं तू न टरति री'

यदि कुछ अधिक समय तक मान रहता है तो 'मानगढ़' में मान कई प्रकार से टूटता है।

(१) श्रीकृष्ण स्वयं विनय एवं सेवा से मना लेते हैं –

सब निसि ढ़ोवा करति किसोरहि भोर मानगढ़ टूटयौ॥
'व्यास' स्वामिनी मिली बांह दै पुनि लचि लालन लूटयौ॥

(व्यास.वाणी.पद.१५६)

"भूलैं भूलैं हूँ मान न करि री प्यारी"

(केलिमाल.१०)

इसी प्रकार पद संख्या २२, २५, ३९, ५७, ५९, ७६, ७८, ७९, ८० आदि पद भी हैं।

(२) छद्म से वीणा वादिनी आदि के रूप में प्रिया जी को प्रसन्न करके छद्म खोलना –

रसिकगुपाल वृंदावन महियाँ खेलत फाग सुहाई।
सुरंग चूनरी ओढि वरो तिय कौ भेष बनाई।
गये जहाँ बैठी श्री श्यामा मुरली मधुर बजाई।
रीझी रीझि बचन कहि मीठे निपट निकट बैठाई॥
पूछतौ बहुत कृपा करि स्यामा कहौ कहाँ ते आई।
नंदगाँव सुख ठाँव तहाँ के कहियत कुँवर कन्हाई॥
सुनत ही नाम पीठि हँसि दीनी चीन्ही हरि लंगराई।
पकरी बाँह लई उर अन्तर चाचरि 'मैंन' मचाई॥

(श्रृं.र.सा.श्रीमैनप्रभुजीमहाराज)

'विदग्ध माधव' में निकुञ्ज विद्या का छद्म एवं 'सैमरी' में श्यामली सखी का छद्म तथा 'किन्नरी' का छद्म, जिसमें रत्नमाला पुरस्कार के स्थान पर 'मान रत्न' माँगकर भंग कराना।

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता। जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥ *(श्रीभागवतजी १/२/१०)*

उस धन का फल केवल जीविकामात्र है, बाकी जितना भी धन है तो धन का एकमात्र फल धर्म ही है। यदि द्रव्य आ गया तो क्या उसको फेंक दें, नहीं; उसे फेंको नहीं अपतु किसी धर्म के कार्य में लगा दो।

(३) छद्म से सखी रूप बनाकर समझाते हैं –

अजहूँ माई टेव न मिटति मान की।
जानति पिय की पीर न मानति सोंह बाबा वृषभानु की।

(व्यास.वाणी.पद.१४२)

(४) अन्य सखियों की सहायता से –

आवत जात हौं हार परी री।
ज्यों ज्यों प्यारो विनती कर पठवत त्यों त्यों तू गढ़ मान चढ़ी री।
तिहारे बीच परे सोई बाबरी हौं चौगान की गेंद भई रीं।
'गोविन्द' प्रभु को वेग मिल भामिनी सुभग यामिनी जात बही री।

(गोविन्दस्वामीजी)

गोविन्दस्वामीजी का पद है, इसमें ऐसा लिखा है कि राधारानी का मान शिखर के नीचे से शुरू हुआ और जैसे–जैसे श्यामसुन्दर ने मनाया वैसे–वैसे श्रीजी ऊपर चढ़ती आयीं। जब श्रीजी ऊपर चढ़ आयीं तो श्याम सुन्दर ने सखियों का सहारा लिया। उन्होंने विशाखा जी व ललिता जी से कहा कि जाओ राधा रानी को मनाओ, हमारी तो सामर्थ्य नहीं है। हम तो थक गये, श्री ललिता जी व अन्य सखियाँ जब यहाँ आती हैं और श्रीजी से कहती हैं कि आप अपना मान तोड़ दो तो श्रीजी मना कर देती हैं। सखी ठाकुर जी के पास नीचे जाती हैं तो ठाकुर जी फिर ऊपर भेज देते हैं फिर नीचे जाती हैं तो फिर ऊपर भेज देते हैं तो आखिर में सखी बोली कि हे राधे ! इस गिरि पर मैं कई बार चढ़ी और कई बार उतरी। मैं तो थक गई। आपका मान तो टूटता ही नहीं। मैं और कहाँ तक दौड़ूँ? इधर से आप भगा देती हो और उधर से वो बार–बार प्रार्थना करते हैं कि जाओ–जाओ। सखी कहती है कि हे राधे ! मैं चौगान की गेंद की तरह से भटक रही हूँ। (क्रिकेट में तो एक आदमी गेंद को मारता है, पर चौगान में हर कोई गेंद को मारता है) वैसे ही आप दोनों मुझे मार रहे हैं। हे राधे ! जल्दी से श्याम सुन्दर से मिलो। ये रात बीती जा रही है। श्रीजी कहती हैं –

दौरी–दौरी आवत मोहि को मनावत हों कहा दामन मोल लई री।
अँचरा पसार के मोहि कूँ खिजावत हों कहा तेरे बाबा की चेरी भई री।
जा री जा सखी भवन अपने सौ बातन की एक कही री।
'नंददास' प्रभु वे ही क्यों न आवत उनके पाँयन कहा मेंहदी दई री॥

(नन्ददास जी)

इसी प्रकार –

"तू रिस छाँड़ि री राधे राधे" (केलिमाल.१७)

तथा १३, १४, १६, १८, ४३, ४५, ६९ आदि एवं श्री चतुरासी जी में १६, ३७, ३८, ३६, ४०, ४५, ७४, ७५, ८३ आदि पद भी हैं।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA,
GAHVARVAN,
BARSANA, MATHURA

Bank – Axis Bank Ltd

A/C – 915010000494364

IFSC – UTIB0001058

BRANCH – KOSI KALAN

MOB. NO. – 9927916699

श्रीराधारमण–प्राकट्यकर्त्ता–गुसाईं गोपालभट्टजी

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु जी के बड़े अनुग्रह पात्र रहे। आपका जन्म श्री रंगम क्षेत्र के बेलगुंडि नामक गाँव में विक्रम संवत् १५५७, माघ मास कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि को हुआ। वेंकट भट्ट जी और श्रीमती सदम्बा जी को आपने, अपने माता–पिता बनने का सौभाग्य प्रदान किया। एक बार श्री चैतन्य महाप्रभु जी जब दक्षिण भारत में तीर्थाटन कर रहे थे तो आपके पिता श्री वैंकटभट्ट जी के अनुनय विनय करने पर महाप्रभु जी ने आप ही के घर को तीर्थ तुल्य बनाने का सौभाग्य दान दिया। उस समय आप अल्प वयस्क थे। मात्र ११ वर्ष की उम्र किन्तु आपने उस प्रथम दर्शन में ही महाप्रभु जी को सर्वस्व समर्पित कर दिया। उस समय महाप्रभु जी का अगाध स्नेह और दिव्योपदेश आपको प्राप्त हुआ।

चातुर्मास्य की अवधि जब पूर्ण हुई, तो आपने महाप्रभु जी के साथ जाने का आग्रह पकड़ लिया, किन्तु महाप्रभु जी ने उस समय आपको आज्ञा की कि अभी माता–पिता की सेवा करो, तदनन्तर वृन्दावन में रूप–सनातन की सन्निधि में चले जाना। अब तो अक्षरशः आज्ञा पालन होने लगा। माता–पिता के देहावसान के पश्चात् आप अपने को रोक न पाये और इस पावन भूमि वृन्दावन में रूप–सनातन की सन्निधि में आ गये। वृन्दावन जब आप आये तो उस समय आप अपने साथ शालिग्राम प्रभु को लाये, श्रीमन्महाप्रभु जी के प्रिय पार्षदों में षड् गोस्वामियों में आपकी गणना हुई। आपकी विद्वत्ता की अलौकिक प्रतिभा किसी से अवर (कम) नहीं थी। आखिर श्री महाप्रभु जी के कृपापात्र वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् श्री प्रबोधानंद सरस्वती जी से आप शिक्षित हुए, ये आपके चाचा लगते थे। इनसे आपने न्याय, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य, दर्शन अलंकारादि का तन्मयता पूर्वक अध्ययन किया था। नीलाचल में विराज रहे महाप्रभु जी को जब गोपाल भट्ट जी का आगमन सूचित हुआ, तो एक वैष्णव के द्वारा उन्होंने प्रभु प्रसादी तुलसीमाला योग पट्ट और बहिर्वास भेजा, जिसे पाकर महाप्रभु जी की महती अनुकम्पा की अनुभूति करते हुए गोपाल भट्ट जी गद्गद हो गये क्योंकि –

"मुख्यस्तु महत्कृपयैव भगवद्कृपालेशाद्वा"

(नारद भक्ति सूत्र)

गोपाल भट्ट जी के प्रथम सुसेव्य ठाकुर – श्री शालिग्राम प्रभु थे, जिन्हें ये गण्डकी नदी से लाए थे और बड़ी प्रीतिपूर्वक सेवा करते थे, किन्तु जब रूप गोस्वामी जी को गोविंददेव को लाड़–चाव लड़ाते देखते, सनातन गोस्वामी जी को मदनमोहन को लाड़ लड़ाते देखते एवं मधु पंडित को गोपीनाथ जी को लाड़ लड़ाते देखते तो अनायास ही आपका मन भी कह उठता कि मैं अपने शालिग्राम को कैसे लाड़ लड़ाऊँ? कैसे इनका श्रृंगार करूँ? कैसे वस्त्र धारण कराऊँ? कैसे शयन कराऊँ? किधर मस्तिष्क करूँ, किधर चरण करूँ, पता नहीं किधर से ये सोते हैं, किधर से ये खाते हैं, किधर से देखते हैं, ऐसा सोचकर फिर आप निराश हो जाते। एक दिन एक भक्त सेठ वृन्दावन में आया और सब मंदिरों में श्री विग्रहों के लिए वस्त्र–आभूषण दे रहा था। जब वह गोपाल भट्ट जी को उनके ठाकुर जी के लिए वस्त्राभूषण देने लगा, तो गोपाल भट्ट जी कुछ नतमस्तक होकर विचार में पड़ गए कि मेरे प्रभु के तो, न हस्त हैं, न श्री चरण हैं, न ग्रीवा है, न कटि हैं ये तो गोलमटोल हैं। यदि मेरे प्रभु विग्रह रूप होते तो मैं भी इनको वस्त्र धारण कराता, सुन्दर–सुन्दर पत्रावलि करता, अब क्या गोलमटोल के श्रृंगार करूँ? रोज पीले चन्दन से पोत देते तो कढ़ी के पकोड़े सदृश प्रभु दिखाई पड़ते। अतः आपने गायन किया –

झूलौ झूलौ मेरे गण्डकि नन्दन।
जैसे कढ़ी पकोड़ी फोरयो ऐसे लिपट्यो चन्दन ॥
हाथ न पाँव नैन नहिं नासा ध्यानहिं होत आनन्दन।
जालन्धर अरु वृन्दावल्लभ करत कोटि हौं वन्दन ॥

वस्त्राभूषण लेने से मना करते हैं, कहीं बेचारे सेठ को

दुःख न हो जाय इसका भय है और यदि ले लेते तो प्रभु को धारण कैसे करायेंगे? किन्तु प्रभु का भी तो प्रण है –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

(गीता ४/११).

जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥

जब आप नामदेव के लिए ब्रह्मराक्षस में से प्रकट हो सकते हैं, प्रह्लाद के लिये खम्बे से प्रकट हो सकते हैं तो श्री गोपाल भट्ट जी के लिए शालिग्राम से आपका प्राकट्य कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं थी। एक बार पुनः निराशापूर्ण दृष्टि से आपने शालिग्राम की ओर देखा कि यदि ये वस्त्राभूषण मैं ले भी लूँगा तो आपको धारण कैसे कराऊँगा? जैसे ही उधर दृष्टि गई तो क्या देखते हैं – नीलोत्पल, नीलसरोरुह, नीलमणि, राधारमण जी जिनकी त्रिभंगी गति है। हाथ में वंशी लिए खड़े हैं, श्री मुख पर मधुर मुस्कान है, प्रेममयी चितवन है और गोपाल भट्ट जी की ओर कटाक्ष कर रहे हैं। मानो कह रहे हैं ले अब तो मुझे वस्त्र आभूषण धारण करा। अब तो झट से सेठ जी के हाथ से गुसाँई जी ने वस्त्राभूषण ले लिए और प्रभु को धारण कराकर श्रांतिरहित श्वास ली। सेवा प्राकट्य ग्रन्थानुसार संवत् १५९९ में उस शुभ दिवस को वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि थी, अतः अद्यावधि इसी तिथि को ठाकुर श्री राधारमण जी का प्राकट्योत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। श्री गोपाल भट्ट जी वृन्दावन वास करते हुए ६२ वर्ष तक श्री राधारमण जी की सेवा में तत्पर रहे। आपकी सेवा–परिचर्या से प्रसन्न होकर स्वयं राधारमण प्रभु ने एक बार एक वणिक के पास जाकर आपको कर्ज से मुक्त किया। राधारमण जी का ये "द्वादश अँगुल का श्री विग्रह" पृष्ठ भाग से शालिग्राम जैसा ही लगता है।

राधारमणजी की विचित्र विशेषता

भक्तों का ऐसा कथन है कि राधा रमण जी के दर्शन कर लेने से श्रीगोविन्ददेव जी, श्री गोपीनाथ जी और श्री मदनमोहन जी तीनों ठाकुरों का दर्शन लाभ मिल जाता है। श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी बड़े दूरदर्शी थे, अतः आपने अपने प्रधान शिष्य गोपीनाथ दास जी, जोकि बड़े विरक्त वैष्णव संन्यासी थे, इनके अनुज सद्गृहस्थ दामोदर दास जी को दीक्षित करके श्री राधारमण लाल की समस्त सेवा–परिपाटी समझाकर सेवाकार्य का भार सौंप दिया। सम्प्रति समस्त गोस्वामीगण दामोदर दास जी के वंशजों में गोस्वामी कृष्णचन्द्र जी के मँझले सुत गोस्वामी "मुन्ना जी" सेवायत हैं। गोस्वामी श्री गोपालभट्ट जी महाराज के द्वारा उस समय चलाई गई अखण्ड भोग राग की व्यवस्था गोस्वामीगणों द्वारा आज तक सुचारू रूप से परम्परागत ढंग से चल रही है।

नित्य सनातनीय 'श्रीकृष्णजन्मभूमि'

अनेकों बार हमारे इस सांस्कृतिक केंद्र को नष्ट करने का प्रयास किया, मथुरा नगरी के प्राचीन आध्यात्मिक स्थल लुप्त प्रायः भी कर दिये, किन्तु इस ब्रज, इस धरा का गोलोक से यहाँ अवतरण हुआ है। यह तो सनातन लीला भूमि है हमारे लीला बिहारी की। अतः इसे सम्पूर्ण रूप से नष्ट कोई भी नहीं कर पाया और आज यह पुनः पूर्ववत् अपनी कीर्ति के प्रकाश का प्रसार सर्वत्र कर रही हैं । श्री ठाकुर जी के प्रपौत्र श्री बज्रनाभ जी महाराज द्वारा श्री कृष्ण जन्म भूमि का निर्माण हुआ, तत्पश्चात् ८०० ई० के लगभग विक्रमादित्य द्वारा मन्दिर का निर्माण हुआ। सन् १००० से १०२६ ई० तक राजा जयपाल के शासन काल में महमूद गजनवी का भारत पर एक बार नहीं, १७ बार आक्रमण हुआ। मथुरा पर भी सर्वप्रथम यवन शासक गजनवी ने ही १०१७–१८ ई० में आक्रमण किया, अनेकों लीला स्थलियों को नष्ट प्रायः कर सम्राट् विक्रमादित्य द्वारा जन्म भूमि पर बने विशाल मन्दिर को तोड़ डाला। भगवान् वासुदेव के उस मन्दिर की भव्यता का वर्णन करते हुए मीर मुंशी अल–उल्वी जो कि महमूद गजनवी का मंत्री था, उसने गजनवी के भारत आक्रमण जो १०१७ ई० में किया, उसकी चर्चा तारीखे यामिनी नामक पुस्तक में की है कि वासुदेव मन्दिर को देखकर स्वयं सुल्तान ने कहा था कि इस

भव्य इमारत को बनाना चाहें तो १० करोड़ दिनार (स्वर्ण मुद्रा) से कम व्यय न होगा और चाहे कितने ही योग्य व अनुभवी कारीगर लगा दिए जायें, २०० वर्ष से कम अवधि नहीं लगेगी। सुल्तान ने कहा – "यह किसी मनुष्य की कारीगरी है ही नहीं इसे बनाने वाला कोइ देव ही होगा और देव निर्मित भवन को कोई कारीगर क्या बनायेगा? उसके बाद सुल्तान महमूद ने २० दिन तक मथुरा शहर को लूटा। सोना, चाँदी, बहुमूल्य मूर्तियाँ तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं को सैकड़ों ऊँटों पर लाद ले गया। अलबदायुनी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उस समय सुल्तान की आज्ञा से एक देव मूर्ति तोड़ी गयी, जिसका वजन ९८,३०० मिस्कल शुद्ध सोना था। उन दिनों यवन मथुरा की बहुत संपत्ति ले गये, उस गंभीर स्थिति से गुजरने के बाद इस मन्दिर का पुनः निर्माण हुआ। सं० १२०७ में कन्नौज के राजा विजयचन्द्र के द्वारा शासन काल में संवत् १२०७ में जज्ञ नामक महाशय ने कृष्ण जन्म स्थान पर एक नया मन्दिर बनवाया, सन् १५१५ ई० के लगभग श्री मन्महाप्रभु चैतन्य देव उस मन्दिर में पधारे थे।

गोकुल देविया आहला मथुरा नगरे।
जन्म स्थान देखि रहे सेई विप्र धरे॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

संवत् १४८९ में सिकंदर लोदी ने इसे नष्ट किया। यहाँ के मन्दिर और मनोरम घाटों को नष्ट–भ्रष्ट करके बड़ी–बड़ी मस्जिदें खड़ी कर दीं और यह सख्त आदेश दे दिया कि घाटों पर कोई भी हिन्दू स्नान करने न आ सके और न कोई नाई उनका क्षौर कर्म करे।

इसके बाद अकबर बादशाह का शासन काल आया जो सन् १५५६ से १६०५ ई० तक रहा, किन्तु अकबर उदार व्यक्तित्व युक्त था। अकबर कालीन ब्रज में हिन्दू धर्म का खूब प्रचार प्रसार हुआ। ब्रजमण्डल में खूब ठाकुरों की विधिवत सेवा, पूजा, संतों का समादर होता रहा, इसके अतिरिक्त अकबर ने स्वयं श्री गोविन्द मन्दिर, दामोदर मन्दिर के लिए २०० बीघा जमीन दी और स्वामी श्री हरिदास जी, रूप गोस्वामी जी, जीव गोस्वामी जी आदि महान संतों के पास उसका समय–समय पर दर्शनार्थ आगमन भी होता रहा।

इसके बाद पुनः लगभग १६१५ ई० में ओरछा के राजा वीर सिंह बुंदेला ने ३३ लाख की लागत से केशवराय के जीर्ण–शीर्ण विशाल मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। अपनी भव्यता, पच्चीकारी एवं अलंकरण की दृष्टि से ये तत्कालीन मंदिरों में अग्रगण्य रहा।

१६५० ई० में जब फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर यहाँ आया तो उसने अपना अनुभव लिखा कि जगन्नाथ और बनारस के बाद मथुरा का मन्दिर सबसे विख्यात है। यह मन्दिर सम्पूर्ण भारत में अत्यंत सुन्दर एवं उत्कृष्ट मंदिरों में से एक है। उसके बाद सन् १६६३ ई० में बर्नियर आया तो उसने भी मथुरा को उल्लेखनीय कहा। अकबर का शासन काल १५५६ ई० से १६०५ ई० तक कहा जाता है, उसके तुरन्त बाद १६०५ से १६२७ ई० तक जहाँगीर का शासन रहा फिर जहाँगीर के जाते ही १६२८ से १६६८ तक ४० वर्ष शाहजहाँ रहा, शाहजहाँ के बाद १६६९ से १७०७ तक औरंगजेब ने हिन्दुओं पर मथुरा की धरा पर अपार प्रहार किये, सन् १६६९ में पुनः जन्म भूमि के मन्दिर का विध्वंस हुआ और इसके स्थान पर एक मस्जिद खड़ी की गयी। औरंगजेब ने जो मथुरा पर कहर किया, इससे मुगल साम्राज्य का जल्दी ही आधिपत्य नष्ट हो गया, सन् १७०७ से १७३९ तक के बीच के काल में बहादुरशाह (फार्रुखशियर) एवं मुहम्मद शाह रंगीला आदि शासक हुए।

सन् १७३९ से १७४४ ई० तक नादिरशाह का साम्राज्य रहा, उसके बाद १७४४ ई० से अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों में तीन बार युद्ध हुआ, इसके बाद २०० वर्ष तक भारत पर अंग्रेजी शासन काल आ गया किन्तु इसमें हमारे ठाकुर विग्रहों पर किसी ने उंगली नहीं की। १८०० से १८५७ ई० के मध्य हिन्दुओं में कुछ जाग्रति आयी। १८१५ ई० में काशी नरेश पटनीमल ने जन्म भूमि की जगह को एक भव्य मन्दिर बनाने की इच्छा से खरीद लिया और भी धार्मिक नगरियों में (अयोध्या, काशी आदि में) हिन्दू राजा संगठित होकर मंदिरों का

निर्माण कराने लगे। १८०४ से १८५७ ई० तक ऐसा कहते हैं कि भारत में शान्ति काल रहा। इस बीच किसी भी प्रकार का घटनाक्रम प्राप्त नहीं होता है। १८५७ ई० अंग्रेजी शासन काल में भारत का स्वतंत्रता संग्राम हुआ। लगभग एक शताब्दी बाद १९४७ ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन छिड़ा और भारत स्वतंत्र हुआ, इसके बाद १५ अक्तूबर सन् १९५३ में राजा पटनीमल का स्वप्न श्री मदन मोहन मालवीय के प्रयास से साकार हुआ, १८१५ ई० में उन्होंने जन्म भूमि को खरीद तो लिया किन्तु कृष्ण स्मारक का निर्माण न करा सके तब पटनीमल के उत्तराधिकारी रायकृष्ण दास से ८ फरवरी सन् १९४४ ई० में वह जन्म भूमि की जमीन घनश्यामदास बिड़ला के सहयोग से श्री मालवीय जी ने खरीद ली और फिर सन् १९५१ ई० में श्री कृष्ण जन्मभूमि ट्रस्ट की स्थापना हुई। जिसके अध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव मालवंकर को नियुक्त किया। उसके बाद एम० अनन्तशयनम् आयंगर हुए। मुसलमानों ने इसमें व्यवधान भी डाला फिर १५ अक्तूबर सन् १९५३ ई० में ट्रस्ट के योग्य अध्यक्ष महान संत श्री अखण्डानन्द स्वामी जी बने, इसी बीच १९५६ ई० में कल्याण के प्रधान जन्मदाता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी (भाई जी) सैकड़ों भक्तों के साथ मथुरा पधारे, इसके बाद तो कार्य स्वतः पूर्णता की ओर अग्रसर होने लगा। १९६५ में श्री भाई जी के द्वारा एक भागवत भवन का निर्माण हुआ। ब्रज के कण–कण में जिसने अपनी ललित लीलाओं का सौरस्य बिखेरा, उस जगदाधार, जगत् नियन्ता, जगदीश्वर की जन्म भूमि को इस कलियुग में उत्थान–पतन की कितनी विषम परिस्थियों से गुजरना पड़ा। यह सम्पूर्ण भारत के लिये मानो "धैर्य मत छोड़ो" की शिक्षा का उद्घोष कर रहा है।

श्रीकेशवाचार्य सेवित ठाकुर 'श्रीहरिदेवजी'

श्री गिरिराज जी के अधिष्ठातृदेव गिरिगोवर्द्धनोधरण, सप्त वर्षीय श्री हरिदेव जी ही हैं। आपने ही सप्त दिवस गोवर्द्धन धारण किया। प्रभु प्रपौत्र श्री वज्रनाभ जी द्वारा ब्रज में ४ सेव्य विग्रह संस्थापित हुए। उनमें ही एक श्री हरिदेव जी हैं।

नमो नमो ब्रज देव जु चारि।
श्री विग्रह कमनीय महाई वज्रनाभ के सेव्य विचारि॥
श्री गोविन्द देव पुनि केसो हरिदेव जु श्री बलदेव निहारि॥
'वृन्दावन' हित रूप अभय पद दायक इनहिं मजौदर डारि॥

समय–समय पर चारों विग्रह लुप्त हुए। श्री हरिदेव जी के भूगर्भस्थ होने पर, श्री केशवाचार्य जी ने इस सेव्य विग्रह का प्रकटीकरण किया। श्रीकृष्ण प्रपौत्र वज्रनाभ जी द्वारा स्थापित श्री हरिदेव प्रभु के मन्दिर का जीर्णोद्धार आमेर नरेश भगवान् दास द्वारा सं.१६३७ वि. में सम्पन्न हुआ। सं.१७३६ में औरंगजेब द्वारा यह नष्ट हुआ। विग्रह को छिपाकर कानपुर जिले के गाँव रजधानी बुधौली में ले जाया गया। हरिदेव जी के साथ अष्टधातु की श्रीजी की भी प्रतिमा थी, जो मथुरा के प्रयाग घाट पर मन्दिर में स्थापित की गई, खेदजनक बात कुछ समय पूर्व यह मूर्ति वहाँ से चोरी हो गई।

ग्वालियर निकटस्थ एक ग्राम के निवासी श्री मोहन मिश्र व श्री भागवती देवी परम भक्त सनाढ्य ब्राह्मण दम्पत्ति थे। आयु की आधी अवधि पूर्ण हो चुकी थी। ५५ वर्ष की आयु में दम्पत्ति को एक दिन वंशधर (पुत्र) की अभिलाषा हुई।

इष्ट आराधन से ही समस्त अभीष्टों की सिद्धि होती है। अतः माता अदिति के अनुसार आपने भी सविधि 'व्रतं केशवतोषणम्' केशवतोषक पयोव्रत किया जिसके फलस्वरूप परम भागवती देवी अन्तर्वत्नी हुई और यथासमय शुभ संस्कार युक्त बालक को जन्म दिया। बालक को माता–पिता केशव नाम से ही पुकारने लगे। विद्वत पिता मोहन मिश्र से शैशव से ही केशव जी ने समस्त वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास का अध्ययन कर लिया, किन्तु इष्टवत् प्रीति श्रीमद्भागवत् जी में ही थी।

बालक में जग से सहज वैराग्य वृत्ति, कृष्ण चरणों में ढ्ढ़ प्रीति देखकर पिता का मन पूर्णतः चिन्तात्यक्त था। एक दिन परीक्षा दृष्टि से स्वभाव विपरीत प्रश्न पिता ने कर दिया।

पिता – "पुत्र ! यह अवस्था, वैराग्य की तो नहीं है और फिर देव ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण से मुक्त हुए बिना तुम क्या सिद्धि पाओगे? "

पुत्र –"पिता जी ! आपके द्वारा पाठित शिक्षाप्रद प्रह्लाद चरित्र मुझे भली–भाँति अविस्मृत है।"

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(श्रीभागवतजी ७/६/१)

कौमार अवस्था ही वैष्णव धर्मों के आचरण के लिए है। भा.११/५/४७ योगेश्वर करभाजन जी के कथानुसार – "जो जीव सर्वात्म भाव से भगवान् के शरणागत हो गया है ; वह सब ऋणों से सर्वदा उन्मुक्त है और पिताजी ! आपने ही मुझमें इन संस्कारों का वपन किया है।" ऐसा परिपक्व प्रेम देखकर परम भागवत माता–पिता ने पुत्र केशव को भगवद् प्राप्ति का आशीष प्रदान किया। तत्क्षण केशव जी ने माता–पिता को प्रणाम करके वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में विचार करते जा रहे थे, यह भक्तिमार्ग मुझ जैसे साधनहीन के लिए तो दुष्प्रवेश्य है। अतः भगवद् प्राप्ति मुझ अनाथ के लिए अशक्य–सदृश है। संदेहात्मक सवाल केशव जी के उत्कण्ठित मन को संकुचित कर रहे थे तब तक साथ चल रहे यात्री ने दूसरे यात्री से पीछे मुड़कर पुकारा : "जल्दी आओ, तुम्हें तुम्हारा मित्र बुला रहा है" भगवद् प्रेरित इस वाक्य ने मानो केशव जी के अन्तस् को पूर्णरूपेण झकझोर दिया, "केशव ! क्या तुम्हे मेरे ऊपर विश्वास नहीं है? शीघ्र आओ, मैं तुम्हारे लिए प्रतीक्षित हूँ।"

सारा अंतर्देश, बस इस एक ही ध्वनि को पकड़े बैठा था, केशव जी अविराम दौड़ते हुए वृन्दावन आये। अब तो पलान्तर युगांतरवत् प्रतीत होने लगा। विरह में अन्न, जल भी छोड़ दिया। कैसा देह–दौर्बल्य।

केवल दर्शन की आस, जाते हुए प्राणों को पकड़कर बैठी है ! प्रतिक्षण मूर्च्छा।

भक्तवत्सल को भी, केशव जी की वियुक्ति असह्य हो चली तब प्रभु प्रेरित गह्वरवन निवासी सिद्ध महत् पुरुष श्री ज्ञानदेव जी ने आकर अचेत पड़े केशव जी को सचेत किया और मन्त्रदीक्षा देकर श्री निभृत निकुञ्ज बिहारी लाड़ली–लाल का साक्षात्कार कराया। श्री गोवर्द्धन की तलहटी में निवास व भजन की आज्ञा की।

नागरीदास जी के शब्दों में –

तरहटी गोवर्धन की रहियै ।
ब्रजबासिन के टूक–जूठ लै गोविन्द कुण्ड नित नहियै ॥
तन पुलकित मन मत्त मधुप ह्वै ब्रज–सुबास कौं लहियै ॥
श्रवन सुनत हरिकथा प्रेम–रस तृषावन्त ह्वै जहियै ॥
स्यामा–स्याम सलौनी सूरत नैनन माहिं बसहियै ॥

महाराज ज्ञानदेवजी ने अवश्यम्भावी घोषणा भी कर दी – अर्चावतार श्री हरिदेव जी को प्रकट करने का सुयश, गौरव तुमको ही प्राप्त होगा। इस महान जगत् में आराध्य–आराधक आप दोनों का ही सम्यक समादर होगा। श्री गुरुदेव की आज्ञा व कृपा से श्री गिरिराज में आपका अद्भुत अनुराग हो गया। स्वरचित गोवर्धनशतक में आपने कहा – **"गोवर्द्धनात्किञ्चिदहं न जाने"**

निष्ठा की यह पराकाष्ठा थी तभी तो श्यामसुंदर सदा साक्षात् आपके साथ खेलते, लीला दर्शन कराते, रसमय विनोदवार्ता करते।

एक दिन अद्भुत आज्ञा की, केशव जी को।

श्री कृष्ण – "केशव ! मेरा एक सेव्य विग्रह बिछुवा कुण्ड के निकटस्थ खेत की मेंड़ में है। उसे प्रकट करो।" (करबद्ध) केशव – "सर्वज्ञ, निखिल–दिव्यगुणों के धाम ! आपके उस श्री विग्रह के साथ स्वामिनी नहीं हैं, मैं युगल उपासक निष्किञ्चन विप्र हूँ। ब्रजवासियों के घर से मुट्ठी भर चून लेकर प्राणवृत्ति से रहता हूँ। हे कृपार्णव ! ऐसी कृपा करें, मेरे हृदय के भाव सुरक्षित रहें। मेरा निष्किञ्चन व्रत खण्डित न हो।

२. युगलोपासना का व्रत खण्डित न हो, कोई अपराध न हो। बिना श्रीजी के एकाकी कृष्णोपासना पाप है अतः अकरणीय है।" श्री शिव कथन –

गौर तेजो विना यस्तु श्यामं तेजः समर्चयेत्। जपेत् वा ध्यायते वाऽपि स भवेत् पातकी शिवे ॥ (सम्मोहन तन्त्र)

श्रीकृष्ण – "केशव ! आज मैं तुम्हारे समक्ष एक गोपनीय रहस्योद्घाटित कर रहा हूँ, जिसे आज तक कोई नहीं जानता ! एक बार श्रीजी के दर्शनार्थ मैं बरसाना गया किन्तु यह मुझे सुलभ न हुआ तब नीलाम्बर गौरांगी के दर्शन हेतु ही मैंने इन्द्रयाग भंग करा कर, श्री गोवर्धन पूजा कराई, जिससे क्रुद्ध इन्द्र ने प्रलयंकर वर्षा कर दी, तब ब्रज रक्षार्थ मैंने गोवर्धन धारण किया। समस्त ब्रज, गिरि के तर आ गया। उन्हीं में अमित सौन्दर्य सर्वाकर्षिका प्राणाधिका श्रीराधा भी आई, इसी (हरिदेव) विग्रह से अनवरत सप्तदिवस मैं उनके दर्शन करता रहा और शुभेक्षण बल से ही गोवर्धन धारण किये रहा।" यह बात स्वरचित 'गोवर्धन महिमामृत' ग्रन्थमें स्वयं केशवाचार्य जी ने उद्धृत की है।

"अतः मेरे इस हरिदेव विग्रह को श्रीजी से रहित न मानकर, **द्वय मिलित एक प्रिया प्रेम प्रतिमा** (प्रिया के प्रेम की प्रतिमा) **'श्रीजी संयुक्त श्री विग्रह'** ही समझो और प्रकट कर, उसकी सेवा करो। इस प्रकार तुम्हारे दोनों व्रत सुरक्षित रहेंगे। तुम्हारा निष्किंचन व्रत भी खण्डित न होगा, मेरे निमित्त तुम कदापि याचना मत करना और मेरी प्रेरणा से स्वतः प्राप्त भोग का तिरस्कार भी न करना, अर्थात् उसे स्वीकार कर लेना।"

केशवाचार्य जी ने, प्रभु का यह आदेश सब ब्रजवासियों को बताया और साथ ही बिछुवा कुण्ड पर वह निश्चित स्थान भी बताया, जहाँ से श्री हरिदेव जी का प्राकट्य होना था। बहुत तीव्रता से खनन कार्य प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही एक में द्वयमिलित मूर्ति चारों ओर एक दिव्य आकर्षण प्रसारित करते हुए प्रकटी। उसका दर्शन करते ही लोगों के हृदय में लालच आ गया। हर व्यक्ति मूर्ति का स्वामी बनना चाह रहा था।

एक – "यह विग्रह मैं अपने घर ले जाऊँगा।"

दूसरा – "वाह ! तुम कैसे ले जाओगे, मेरे खेत की मेड़ में निकला विग्रह ! "

तीसरा – "हटो–हटो, तुम कोई नहीं, मैं यहाँ का जमींदार हूँ, अतः मूर्ति पर मेरा स्वतन्त्राधिकार है।"

परस्पर वाद–विवाद देखकर, केश्वाचार्य जी पीछे हो लिये, तब तक, एक कोई विवेकी – "देखो भाई, उचित तो यह है कि जिसने इस विग्रह का भेद बताया ..... वही इसका सही अधिकारी है। उससे पूछकर ही विग्रह सम्बन्धी कोई कार्य करो। अन्यथा परिणाम अच्छा नहीं होगा।" यह सुनते ही, पीछे से ४–५ ध्वनियाँ एक मत में आयीं – "तुम्हें यहाँ पंच या पंडित किसने बनाया, जो तू हमारा अच्छा–बुरा परिणाम देख रहा है। यहाँ खड़ा होना चाहता है, तो मुँह बन्द रख।" बेचारा चुप हो गया !

तब तक व्योमवाणी हुई – "जो, एकाकी इस श्री विग्रह को अंक में भरकर ले जाएगा, वही इसका सेवाधिकारी होगा।" सबने अतिशय प्रयास किया उठाने का किन्तु यह तो हिली तक नहीं ! अब सबने केशावाचार्य जी से प्रार्थना की। पूज्य आचार्य जी जैसे ही विग्रह के समक्षस्थ हुए, और अपने दोनों कर अग्रसर किये, थोड़ा स्पर्श पाते ही,

ये क्या ! श्री हरिदेव जी स्वयं केशवाचार्य जी के वक्ष से आ चिपटे। जन समुदाय (चारोंः ओर से) – "श्री हरिदेव जी महाराज की ऽऽऽऽऽऽऽऽऽ जय !! "

यह तो स्पष्ट हो ही गया था कि हरिदेव जी का प्राकट्य आचार्य जी के लिए ही हुआ है।

हरिदेव जी को अंक में भरकर पूज्य आचार्य जी अपनी छोटी कुटी में ले आये। सेवारम्भ हो गयी।

ये ठाकुर चट्टू भी है और पेटू भी। एक दिन बोले – "केशव जी ! आज तो पायस (खीर) पाऊँगा।" आपकी इस जिद्द के पीछे आपका एक स्वार्थ था – "अपने भक्त का यश प्रसारित करना।" केशव – "मैं ठहरा एक भिक्षाजीवी विप्र। भला, मैं कहाँ से पायस लाऊँगा? "

उसी रात्रि हरिदेव जी ने आमेर के राजा भगवान् दास जी को स्वप्नादेश किया। प्रातः होते-होते तो राजा केशवाचार्य जी के पास आ गया, भक्त, भगवान् का दर्शन पाकर अत्यन्त प्रभावित हुआ और श्री हरिदेव जी के लिए सं० १६३७ वि० में लाल पत्थर के भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। भोग-राग की सम्यक् व्यवस्था की। गाँव के गाँव स्वामी जी को सेवार्थ सौंप दिए।

अब तो आचार्य श्री का प्रभाव और दिन-दूना बढ़ने लगा। यवनों के आक्रमणकाल में म्लेच्छ औरंगजेब की क्रूर दृष्टि से यह मन्दिर भी अस्पृष्ट न रहा। फलतः यह भी उस बर्बरता का शिकार हुआ। श्री हरिदेव जी के विग्रह को ब्रज से बाहर ले जाया गया। यह देव प्रतिमा आजकल कानपुर जिले के गाँव राजधान, बुछौली में विराजमान है। भरतपुर राजा की ओर से इस देव विग्रह की सेवा-व्यवस्था के लिए भगौसा और लोधीपुरा गाँव अनुदान में दिए हुए हैं। साथ ही एक अच्छी धनराशि बन्धान के रूप में भी यहाँ दी जाती है।

अपनी ब्रजयात्रा के अवसर पर महाप्रभु – चैतन्यदेव ने श्री हरिदेव जी का दर्शन कर प्रेमावेश में नृत्य किया था –

प्रेम मत्त आये जु चलि श्री गोवर्धन ग्राम ॥
श्री हरिदेवहिं देखि कैं करै तिन्हैं परनाम ॥
है जु मधुपुरी पद्म के पच्छिम दल जिहिबास ॥
नारायण हरिदेवजू हैं सो आदि प्रकास ॥
प्रेममत्त ह्वै कैं जु प्रभु नाचैं आगैं ताहि ॥
आये देखन लोग सब सुनि कै अचिरज आहि ॥
प्रभु कौ प्रेम स्वरुप लखि जन अचरज विस्तार ॥
किय हरिदेव जु पूजकनि प्रभु कौ सत्कार ॥

श्रीपाद रूप गुसाँई विरचित "दानकेलिकौमुदि" के अनुसार श्रीराधारानी अपनी सखी-सहचरियों के साथ श्रीहरिदेवजी के दर्शनार्थ यहाँ आया करती थीं। होली के पश्चात् चैत्र कृष्ण द्वितीया को इनके प्राकट्योत्सव के रूप में गोवर्धन स्थित मन्दिर से इनका फूलडोला यहाँ लाया जाता है और होलिकोत्सव सम्पन्न होता है।

ब्रज के राजा 'दाऊ दयाल'

गर्ग संहितानुसार –

श्रीशेष से ही धाम प्रकट होता है अतः दाऊ दयाल ही ब्रज के राजा हैं। एक समय ब्रह्मा-शिवादि देव गोलोक धाम पहुँचे। सर्वप्रथम इन्हें वहाँ विरजा के तट पर एक तेजोमय नगर दिखाई पड़ा। ध्यान लगाने पर उसमें एक परम शान्तिमय साकार धाम का दर्शन हुआ जिसमें उज्ज्वल धवल सहस्रमुख वाले श्रीशेष विराजित थे। शेष जी की गोद में लोक वन्दित परम प्रकाशमय गोलोक धाम का दर्शन हुआ जहाँ काल का भी प्रवेश नहीं है।

तज्ज्योतिर्मंलेऽपश्यत्साकारं धाम शान्तिमत्
तस्मिन्महाद्भुतं दीर्घं मृणालधवलं परम्।
सहस्रवदनं शेषं दृष्ट्वा नेमुः सुरास्ततः ॥१७॥
तस्योत्संगे महालोको गोलोको लोकवन्दितः।
यत्र कालः कल्यतामीश्वरो धाममानिनाम् ॥१८॥

(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड २/१७, १८)

इस प्रकार शेषजी से ही धाम का प्राकट्य होता है। धाम के प्राकट्य कर्ता होने से शेष अवतार दाऊ दयाल ही ब्रज के राजा हैं। परब्रह्म का आधार वे स्वयं शासक रूप में हैं। अन्तिम मूल का कोई मूल न होने से उन्हें अमूल कहा जाता है। अन्तिम प्रकाशक का कोई प्रकाशक न होने से वह स्वयं प्रकाश कहलाता है। इसी प्रकार सबका अन्तिम आधार होने से स्वयं प्रतिष्ठित कहलाता है। श्रुति भी यही कहती हैं – 'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' (छा. उ. ७/२४/१) वह परब्रह्म किस में प्रतिष्ठित है अर्थात् किसी में नहीं। वह तो स्वस्वरूप में ही प्रतिष्ठित है –

"शिष्यते यः सषेशः" जो शेष रहे वही शेष है प्रलयान्त में विधि की द्विपरार्ध आयु व्यतीत होने पर सब कुछ नष्ट होने पर भी शेष रहता है इसी से उसे शेष कहा गया है।

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन्।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्
नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥

(श्रीभागवतजी ५/२५/९)

नारद जी के वचन – शेष जी की दृष्टि मात्र से ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय आदि के हेतुभूत सत्वादिगुण अपना–अपना कार्य करते हैं, उनका स्वरूप अनन्त व अनादि है। नानात्मक प्रपञ्च को स्वयं में ध्यान करने वाले संकर्षण तत्व को जानना कठिन ही है। कभी वे अनन्त के रूप में तो कभी लक्ष्मण के रूप में तो कभी बलराम के रूप में आते हैं।

शक्ति रूप में शेष –

शाक्त मतानुसार कुण्डलनी के प्रतीक श्री बलराम जी हैं। "तोडल तन्त्र" में श्रीबलराम जी को भैरवी का प्रतीक माना है –

तारा देवी नीलरूपा, कमला कूर्म चण्डिकाः।
धूमावती वाराहस्यात् छिन्नमस्ता नृसिंह का।
भुवनेश्वरी वामन स्यात् मातंगी राम मूर्तिका।
त्रिपुरा जामदंग्यात् बलभद्रस्तु भैरवी॥

वैदिक धर्म का शुभारम्भ चतुर्व्यूह उपासना से होता है। उस चतुर्व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध) में आप संकर्षण के रूप में विद्यमान हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रज मण्डल के प्राचीनतम देव बलदेव हैं। चितौड़ के शिलालेखों में, जो कि ईसा से पाँचवीं शताब्दी पूर्व के हैं, बलदेव उपासना इंगित की गई है। अर्पटक भोर गाँव और नाना घटिका के शिलालेख जो कि ईसा के प्रथम–द्वितीय शताब्दी के हैं। जुनसुटी की बलदेव मूर्ति शुंगकालीन है। न केवल ब्रज और भारत में प्रत्युत यूनान, अफगानिस्तान, रूस आदि सुदूर देशों में भी श्रीबलराम जी की पूजा अर्चना प्रचलित थी जिसका प्रमाण वहाँ के उत्खनन से प्राप्त हुए बलदेव विग्रह हैं। इसके अतिरिक्त यूनान के शासक अगाथोक्लीज के समय में रजत मुद्राओं पर बलदेव जी का अंकन होता था। ये मुद्राएं अद्यावधि अनेक पुरातत्व संग्रहालयों में द्रष्टव्य हैं। अफगानिस्तान से भी कुछ ऐसी रजत मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, ये सभी ईसा पूर्व की हैं। मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में श्रीबलराम जी की लगभग ३० दिव्य मूर्तियाँ हैं जिनमें कुछ कुषाण कालीन, कुछ शुंग कालीन, कुछ गुप्त कालीन और कुछ मध्य कालीन हैं, जो ईसा से दो–तीन शताब्दी प्राचीन हैं। भारत वर्ष में बलराम जी सर्वत्र विराजित हैं। जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ के साथ विराजित हैं। उत्तर में जम्मू से कन्याकुमारी के मध्य चेन्नई में बलदेव मन्दिर है। जिस समय बलराम जी ने तीर्थाटन किया, दक्षिण के सभी तीर्थों में गए, अतः वहाँ अनेक देवालय हैं। उड़ीसा के केंद्र पाड़ा में बलराम जी का बड़देव जू के नाम से प्रख्यात मन्दिर है। ब्रजभूमि में तो ब्रज के राजा होने से आप सर्वत्र ही विराजित हैं किन्तु दाऊ जी के अनेक स्थलों में प्रसिद्ध है "बलदेव ग्राम"। मथुरा जनपद नगरी ब्रज मण्डल के पूर्वी छोर पर मथुरा से २१ कि.मी. की दूरी पर एटा–मथुरा मार्ग के मध्य बलदेव ग्राम स्थित है, जिसका पौराणिक नाम विद्रुम वन है। गर्ग संहितानुसार –

कोल दैत्य के वध उपरान्त श्रीबलराम जी जह्नु तीर्थ गए। वहाँ से पश्चिमी भाग में 'आहार स्थान' में रात्रि विश्राम किया। ब्राह्मणों की समुचित सेवा करके अगले ही दिन वहाँ से एक योजन दूर मण्डूक देव के पास गए। मण्डूक देव ने श्री बलराम जी की कृपा प्राप्त करने के लिये उत्कट तप किया था। ध्यानस्थ मण्डूक देव पर श्री बलराम जी ने कृपा की एवं अपना साक्षात्कार कराया। मण्डूक देव ने श्रीबलराम जी की स्तुति की। इस पर प्रसन्न होकर उन्होंने वर माँगने के लिए कहा तो मण्डूक देव बोले – हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो भागवत संहिता प्रदान करें। श्रीबलराम जी ने कहा – वह तो तुम्हें उद्धव जी से ही प्राप्त होगी। तदन्तर बलराम जी आगे चले तो अनेक देव व ब्रह्मऋषियों ने प्रार्थना की – हे भगवन! हम जब–जब संकट में पड़ें तो आपके

चरणों का चिंतन करें व आपकी कृपा से समस्त बाधाओं से मुक्त हो जाएँ। श्रीबलराम जी ने कहा –

यदा यदा मां स्मरथ तदाऽहं शरणागतान् ।
रक्षिता स्यां कलौ नूनमिति सत्यं वचो मम ॥

(गर्गसंहिता, मथुराखण्ड २४/१०२)

जब–जब आप लोग शरणापन्न होकर मेरा स्मरण करेंगे तब–तब कलियुग में मैं निश्चय ही आप सबकी रक्षा करूँगा।

विद्वान सन्तों का मानना है कि कलिकाल में मण्डूक देव जी श्रीकल्याण देव जी के रूप में अवतरित हुए जिन्होंने श्रीबलदेव जीको प्रकट किया और श्रीबलराम जी ने दुर्धर्ष आसुरी शक्ति को पराजित किया।

अवतरण लीला –

गोवर्धन की तलहटी में 'भर्ना खुर्द' ग्राम के सूर्य कुण्ड तट पर परम सात्विक विप्र श्रीकल्याण देव जी भजन करते थे। एक समय श्री कल्याण देव जी अन्तःप्रेरणा से जगन्नाथ पुरी की यात्रा के लिए निकले। मानसी गंगा में स्नान करके मथुरा पुरी में पहुँचे। वहाँ यमुना स्नान करके चले तो विद्रुम वन आये। सघन एकान्त वह स्थान बहुत ही प्रिय लगा एवं कुछ दिन यहाँ भजन करने का निश्चय किया। एक दिन स्वयं हलधर श्रीबलराम जी उनके सन्मुख प्रकट हुए और वरदान माँगने को कहा, इस पर कल्याण देव जी ने कहा –

ब्रज के राजा दाऊ दादा

भगवन! मुझे आपके नित्य दर्शन के अतिरिक्त कुछ भी अभीष्ट नहीं है अतः आप नित्य मेरे घर में विराजें। बलराम जी ने कहा – हे विप्र देव! इस वट वृक्ष के नीचे भूमि में मेरी एवं रेवती की प्रतिमा दबी हुयी है, तुम उसे प्रकट करो। सुनते ही बलदेव जी की व्यग्रता और प्रसन्नता दोनों ही बढ़ गयी। भूमि खनन का कार्य आरम्भ हुआ। दूसरी विचित्र बात यह हुयी कि उसी रात्रि श्रीमद् वल्लभाचार्य महाप्रभु के पौत्र गोस्वामी श्री गोकुल नाथ जी को प्रभु ने स्वप्नादेश किया – मैं विद्रुम वन में वट वृक्ष के नीचे भूमिस्थ हूँ, आपकी श्यामा गो नित्य मेरी प्रतिमा के ऊपर आकर दूध स्रवित करती है। आप शीघ्र मुझे प्रकट करो। प्रातः होते ही गोस्वामी गोकुलनाथ जी भी विद्रुम वन आये। वहाँ कल्याण देव जी के द्वारा पूर्व ही खनन कार्य चल रहा था। दोनों परस्पर मिले एवं अपना–अपना वृत्तांत सुनाया एवं प्रसन्नता के साथ श्रीरेवतीरमण को प्रकट किया किन्तु एक सघन वन में सेवा कार्य कैसे होगा अतः गोस्वामी गोकुल नाथ जी ने श्रीबलराम व रेवती जी को गोकुल में प्रतिष्ठित करने की इच्छा व्यक्त की। एतदर्थ अनेक प्रयत्न किये किन्तु मूर्ति अपने स्थान से हिली तक नहीं। तब प्राकट्य स्थान पर ही प्रतिष्ठा हुई। यह वही स्थान था जहाँ कल्याण देव जी भजन करते थे। नित्य घर में निवास की याचना करते थे वह पूर्ण हुई। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्रीवज्रनाभ जी द्वारा चार देवों में एक बलदेव हैं। कालान्तर में यह भूमिष्ट हो गए थे। पुरातत्ववेत्ताओं का कथन है कि यह विग्रह २००० वर्षों से भी प्राचीन है। ब्रज मण्डल के प्राचीन देव विग्रहों में बलदेव जी का विग्रह सर्वाधिक प्राचीन एवं विशाल है। यह श्याम वर्ण की मूर्ति लगभग आठ फुट ऊँची व साढ़े तीन फुट चौड़ी है, पीछे शेषनाग सात फणों से छाया किये हुए हैं। मूर्ति नृत्य मुद्रा में है, दाहिना हाथ सिर से ऊपर वरद मुद्रा में है एवं बाँए हाथ में चषक है।

ध्यायमानःसुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदित–
विकृतविह्वललोचनःसुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः
स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन
माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां

वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्महेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥

(श्रीभागवतजी ५/२५/७)

विशाल नेत्र, भुजाओं में आभूषण, कलाई में कड़ूला उत्कीर्णित है। कटि में धोती धारण किये हुए हैं, एक कान में कुण्डल हैं व गले में वैजन्ती माला है। मूर्ति के सिर के ऊपर से चरणों तक शेष नाग स्थित है। तीन वलय हैं जो योग शास्त्र की कुण्डलनी शक्ति के प्रतीक हैं। श्रीदाऊ जी के विषय में प्रसिद्ध है –

ब्रज मण्डल भाजन परी भाजि गए सब देव।
श्री यमुना सूनी पड़ी द्वार अड़े बलदेव ॥

मण्डूक देव को दिया हुआ वचन "मैं कलियुग में आप सब की रक्षा करूँगा" श्री दाऊ जी ने पूर्ण किया।

चाचा वृन्दावन दास जी की वाणी में –

'प्रथम सोनहद पुनि वनचारी षांभी (खाम्बी) षंभ (खम्ब) गड़यौ जु सुनाऊँ ॥' श्रीदाऊजी ने खाम्बी में खम्ब गाढा है जो अद्यावधि दर्शनीय है। **'पूरब चौकी रोहिणी नन्दन रीढ़ो ग्राम नाम कहे सब जन।'** पूर्व में रीढ़ा ग्राम (बलदेव ग्राम) में दाऊ जी प्रकट हुए हैं, इस प्रकार चारों दिशाओं में स्थित होकर दाऊ जी ने ब्रज की रक्षा की है। **'नमो नमो बरहद विख्यात। पूरब उत्तर दिस ब्रज की हद ॥'**

पूर्व, उत्तर की ओर बरहद ब्रज की हद है जहाँ श्री दाऊ जी विराजित हैं। तीन बार दाऊ जी के विग्रह की चोरी हुई जिनमें दो बार दाऊ जी लौट आये किन्तु भावनाओं की कमी के कारण पुनः श्री विग्रह नहीं लौटा।

हरि गोचारन जहाँ लग जात ॥
श्रीबलदेवकृष्ण के अग्रज तहां विराजत कमनीगात।
हल मूंसल है आयुध जिनके असुर बली तिनतें जु डरात ॥

यह सबसे प्रमुख पंक्ति है, इसी में कल्याणदेव जी को दिया हुआ वचन सत्य हुआ है, श्री बलराम जी के द्वारा ब्रज की रक्षा हुई है। जिस समय मूर्ति भंजक क्रूर कर्मा औरंगजेब मथुरा के केशव देव मन्दिर एवं महावन के अनेक प्राचीनतम देव–स्थलों को नष्ट करता हुआ आगे बढ़ा तो उसने बलदेव जी की ख्याति सुनी और विनाश के निश्चय से आगे बढ़ा किन्तु बलराम जी ने चमत्कार दिखाया। सेना निरन्तर बढ़ रही थी बलदेव ग्राम की ओर किन्तु जितना भी चलते "बलदेव ग्राम" दो कोस दूर रह जाता। अतंतः औरंगजेब समझ गया कि निश्चय ही कोई चमत्कारी देव विग्रह हैं। इसके बाद भी जब वह बलदेव ग्राम की ओर बढ़ा तो झुण्ड के झुण्ड बर्र–ततैया टूट पड़े। सैकड़ों सैनिक, घोड़े तो उसी समय समाप्त हो गए। मरण स्थिति आ गई। अनुक्षण औरंगजेब ने उस दिव्य स्थान का प्रभाव देख कर शाही फरमान जारी किया। मन्दिर को पाँच गाँव की माफी एवं एक विशाल नक्कारखाने का निर्माण करके भेंट किया। यही नहीं नक्कारखाने की व्यवस्था हेतु प्रतिवर्ष राजकोष से धन देने का आदेश निकाला। यह नक्कारखाना मन्दिर में आज भी दर्शनीय है जो औरंगजेब की पराजय का मूक साक्षी है। इसी फरमान नामे का पालन करते हुए औरंगजेब के पौत्र शाहआलम ने पाँच गाँव से बढ़ाकर सात गाँव कर दिए। जिनमें खड़ेरा, छबरऊ, नूरपुर, अरतौनी, रीढ़ा आदि हैं जिनको तत्कालीन क्षेत्रीय प्रशासक (वजीर) नजफ़ एवं बहादुर के हस्ताक्षर से शाही मुहर द्वारा प्रसारित किया गया तथा स्वयं शाहआलम ने एक पृथक से आदेश चैत्र सुदी–३ संवत् १८४० को अपनी मुहर एवं हस्ताक्षर से जारी किया। शाहआलम के बाद इस क्षेत्र पर सिंधिया राजवंश का राज हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण जागीर को यथास्थान सुरक्षित रखा एवं पृथक से भोग राग माखन मिश्री व रख रखाव के लिए राजकोष से धन देने की स्वीकृति दिनाँक भाद्रपद वदी चौथ संवत् १८४५ को गोस्वामी कल्याण देव जी पौत्र गोस्वामी हंस राम जी व जगन्नाथ जी को दी। यह सम्पूर्ण जमीदारी आज भी मन्दिर श्री दाऊ जी महाराज व गोस्वामी श्री कल्याण देव जी के वंशजों के अधिकार में है।

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ।सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥
सौ, दो सौ नहिं करोड़ों वर्षों के जब पुण्य इकट्ठा होकर आते हैं,तब जीव को 'वैराग्य' की प्राप्ति होती है। 'वैराग्य'कोई ऐसी वस्तु नहीं है जैसा कि हम लोग समझते हैं कि कर्म फूट गया; 'वैराग्य' बहुत बड़ी वस्तु है।

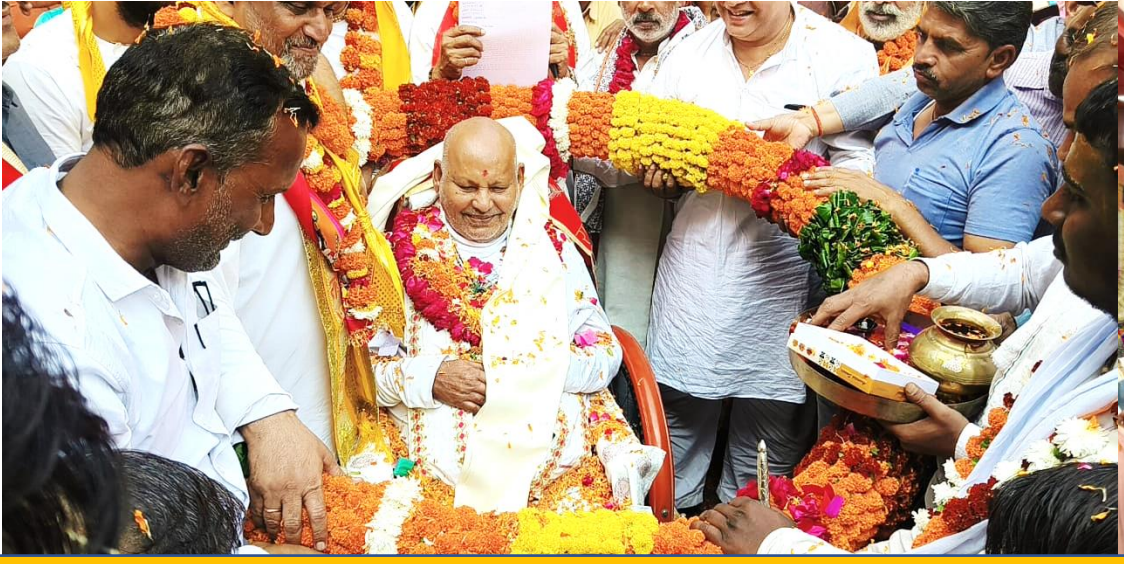

कामवन (कामां) में पूज्यश्री बाबा महाराज का ब्रजवासियों द्वारा भव्य स्वागत

'श्री राधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा' का बरसाना धाम में भव्य स्वागत व यात्रा संपन्न हुई

प्रख्यात भागवत कथाकार पूज्यश्री रमेश भाई ओझा जी द्वारा दिनांक ४ अक्टूबर २०२२ को ब्रज के विरक्त संत पद्मश्री पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज को "देवऋषि" सम्मान से अलंकृत किया गया, जिसे मान मन्दिर सेवा संस्थान की ओर से श्री हरेश भाई संघवी ने स्वीकार किया ।

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52
से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित